प्रकाशक
रामतीर्थ भाटिया
राष्ट्रीय साहित्य मन्दिर
59 H IV लाजपत नगर
नई देहली—१४

प्रथम संस्करण
नवम्बर—१९५८

मुद्रक
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहरतारा, वाराणसी-४

अभिनन्दन

इस पुस्तक में सिन्धी भाषा और उसके साहित्य के मर्मज्ञ श्री मोतीलाल जोतवाणी ने सिन्धी के बारह प्रसिद्ध आधुनिक कहानी लेखकों की कहानियों का संकलन प्रस्तुत किया है। इस संग्रह की प्रायः सभी कहानियों में हमें जहाँ सिन्धी समाज की वास्तविक झाँकी देखने को मिलती है वहाँ आधुनिक समाज के अनेक पक्षों पर भी व्यापक प्रकाश डाला गया है।

आज जबकि भारतीय साहित्य में नव जागरण के चिह्न दृष्टिगत हो रहे हैं, तब भी जोतवाणी जैसे उत्साही नवयुवक का यह प्रयास सचमुच अभिनन्दनीय ही कहा जायगा। हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में तो इस संग्रह से योग मिलेगा ही साथ ही पाठकों को एक उपेक्षित किन्तु उत्सो-न्मुखी भाषा के साहित्यकारों की कला से परिचित होने का स्वर्ण अवसर प्राप्त होगा।

हमारे समाज में प्रचलित ऐसा कोई विचार या भाव इन कहानियों से नहीं छूटने पाया जिसका सम्यग् अनुशीलन इनमें न किया गया हो। सांस्कृतिक और साहित्यिक अभ्युत्थान में इस संग्रह का एक विशिष्ट स्थान होगा। मैं

श्री श्रीवास्तवजी के इस शुभ प्रयास का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और आशा करता हूँ कि इनके ही अनुकरण पर असमिया, उड़िया, पंजाबी, काश्मीर, नेपाली आदि भाषाओं की कहानियों के संग्रह भी हिन्दी में प्रकाशित होंगे। बंगला मराठी, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ और तमिल-गुजराती आदि भाषाओं का कथा-साहित्य तो हिन्दी में विद्यमान है ही। पहली तीन भाषाओं के कथा साहित्य का अनुवाद तो प्रचुर मात्रा में हुआ है।

१ अक्तूबर ५८   क्षेमचन्द्र सुमन

अपनी बात

यदि मेरी इस 'बात' को भी इस कहानी-संग्रह की एक कहानी न माना जाय और वस्तु स्थिति का वर्णन मात्र समझा जाय तो मैं कहूँगा कि हमारी सिंधी-कहानी का जन्म (इतिहास में तो नहीं, लेकिन) एक कालेज के बाहरी 'लान' पर और उस कालेज के होस्टल में हुआ। यहाँ 'कहानी' से मेरा तात्पर्य आज की छोटी कहानी से है जो पश्चिम की देन है। हम इस बात को यों भी कह सकते हैं कि कहानी जब सरल स्वभाव की छोटी बालिका थी तो उसने अपनी जन्म भूमि भारत को छोड़ा। वह पश्चिम में पल पुसकर बड़ी हुई। युवती होने के साथ-साथ उस में 'स्मार्टनेस' आ गई और अब वह इतनी सरल नहीं रह गई कि एक बात को साफ सीधे ढंग से कह दे। अब वह बातें करती है तो उसका व्यंग्यार्थ भी निकलता है। वह मजाक भी करती है। अब उसमें घुमा-फिरा के बात करने का सलीका आ गया है। तात्पर्य यह कि कहानी का आधुनिक रूप बड़ा ही मनोहर हो गया है। ऐसी कहानी का जन्म हमारे यहाँ यदि कालेज की दीवार में हुआ तो आश्चर्य की बात नहीं। दूसरे महायुद्ध के बाद सिंधी साहित्य में विद्रोह की भावना जगी। साहित्य ने उपदेश और विदूषक के वेश उतार फेंके। अब वह उपदेश और

मनोरंजन की वस्तु नहीं रह गया। जीवन की समस्याएँ उस में स्थान पाने लगीं। जीवन की व्याख्या उसमें होने लगी। बंगला हिन्दी उर्दू, गुजराती, मराठी के उन्नत साहित्यों का उस पर प्रभाव पड़ने लगा।

दूसरे महा समर से पहले अन्यान्य साहित्यों की सर्वश्रेष्ठ कृतियों के अनुवाद सिंधी में होते थे। मौलिक कहानियाँ भी लिखी जाती थीं। वैसे तो हमारी मौलिक कहानी को एक शताब्दी से अधिक समय हुआ है। सिंधी की प्रथम मौलिक कहानी "राय डियाच एँ (और) सोरठ' १८४९ में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी कैप्टन स्टेक (Stack) की सिंधी-व्याकरण पुस्तक के साथ परिशिष्ट के रूप में दी गई थी। उसके बाद लगभग ६ वर्ष तक सिंधी में नीति मनोरंजन और समाज-सुधार के उद्देश्यों को लेकर कहानियाँ लिखी जाने लगीं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ये कहानियाँ अधिकतर अन्य भाषाओं से अनूदित रहती थीं।

१९४ के पश्चात् स्वराज्य आन्दोलन और दूसरे महायुद्ध के कारण वातावरण में जोश की लहर थी। सिंधी के नवयुवक-लेखक प्रगतिवादी-लेखन कार्य की ओर प्रवृत्त हुए। १९४१ में श्री गोविन्द पंजाबी अरफ़त अली तथा उनके अन्य साथियों ने 'नई दुनियाँ' प्रकाशन-संस्था की स्थापना की। अब नये विचारों को जन-मानस तक पहुँचाने का साधन मिल गया। इस नई दिशा में उन्मुख 'नई आरें' कहानी संग्रह निकला जिसमें नवीन लोक की बातें थी और जिसमें नया आलोक था। लगभग उन्हीं दिनों कराची के ड॰ ज॰ सिंध कालेज में कालेज के युवकों ने एक संस्था

जिसके तत्वावधान में कई साहित्य-गोष्ठियाँ होने लगीं। ये नव
कालेज के प्रांगण में घास पर बैठ जाते अथवा छात्रावास के
कमरे में मिलते थे वहाँ वे अपनी रचनाएँ पढ़ते थे और
रचना के नवीन मापदण्डों की कसौटी पर परखते थे। ऐसे
युवकों की ओर से धड़ाधड़ मौलिक कहानियाँ आने लगीं। इनमें
नकी सशक्त लेखनियों से निकली कहानियों का एक संग्रह
रवानी फूल" नाम से प्रकाशित हुआ। यह संग्रह सिंधी के
नी-साहित्य के क्षेत्र में मील का पत्थर है। उस नई धारा के कुछ
कों के नाम गिनाना अप्रासंगिक न होगा—सोभो ज्ञानचंदानी,
न्द माखी गोबिन्द पंजाबी, राम पंजवानी, शेख अयाज शेख
र लखमण रामनाणी, कीरत बाबानी, उत्तम मुरली आहूजा
न्द गोलानी, आसानन्द मामतोरा आदि।
बटवारे के बाद सिंधी-कहानी-साहित्य की अप्रत्याशित प्रगति हुई
भारत की पुण्य भूमि पर भी सिंधी लेखकों ने साहित्य-गोष्ठियों को
रत का अनुसरण रक्खा। ये गोष्ठियाँ 'अदबी-सभाएं' के नाम से
र्ई दिल्ली, अजमेर आदि में होती हैं। सच तो यह है कि इन
दबी-सभाओं से ही सिंधी-साहित्य का नई पीढ़ तैयार हो रहा है।
४९–१९४६ की शताब्दी में जो सिन्धी कहानियाँ मिलती हैं वे
देकतर अनूदित हैं और जीवन को छूने की कम शक्ति रखती हैं।
४८–१९४८ के शताब्दी के उत्तर समय में जो सिंधी-कहानी-
हित्य निकला है वह अधिकतर मौलिक है और जीवन और समाज
सभी अर्थों में दर्पण है। इसी शताब्दी के कहानी-साहित्य पर उतना

गद्य नहीं जितना दशाब्दी के कहानी साहित्य पर है। इस संग्रह की कहानियाँ इस दशाब्दी में लिखी गई हैं।

प्रस्तुत संग्रह के सम्बन्ध में—

इस संग्रह में सिंधी के सब जाने-माने कहानीकारों की रचनाएँ न आ सकी हैं। हमारे लिए यह सम्भव भी न था। लेकिन इस संग्रह से हिंदी-पाठकों को सिंधी-कहानी-साहित्य की गतिविधि का परिचय अवश्य मिल जायगा।

श्री रामतीर्थ भाटिया ने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है और श्री प्रेमचन्द्र 'सुमन' ने इसकी भूमिका लिखी है। एतदर्थ मैं दोनों का कृतज्ञ हूँ। अनुज नन्दलाल ओतवाणी ने मेरा हाथ बँटाया। लेकिन उसका धन्यवाद क्योंकर करूँ! मैं सिंधी के कहानीकारों का भी आभारी हूँ जिन्होंने अपनी रचनाओं का हिंदी अनुवाद करने के लिए सहर्ष अनुमति प्रदान की।

आशा है कि हिंदी के पाठक, सिंधी की श्रेष्ठ कहानियों के इस प्रथम संग्रह को पसन्द करेंगे।

४ एल/१४
लाजपत नगर,
नई दिल्ली।
दिनांक ६ अक्तूबर १९५८

—मोतीलाल ओतवाणी

डॉ० प्रभाकर माचवे को

जिनकी सत्प्रेरणा से मैं सिंधी-कहानी-
साहित्य के हिंदी-अनुवाद-कार्य की
ओर प्रवृत्त हुआ।

—सम्पादक तथा अनुवादक

क्रम

सुहागिन : श्री गोवर्धन महबूबानी

श्री गोवर्धन महबूबानी 'भारती' सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी हैं। ये सिंधी के सफल कवि कथाकार और नाटककार हैं। इनकी सेवाओं से बाल-साहित्य की भी श्री-वृद्धि हुई है। अभी हाल ही में आपकी एक बालोपयोगी पुस्तक 'बातियूं' (सिंधी) पर भारत सरकार ने प्रथम पुरस्कार दिया है। इसके अतिरिक्त इनका 'गुल एं मुकिड़्यूं" (फूल और कलियाँ) कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इनके कुछ हिंदी नाटक भी निकले हैं।

प्रस्तुत कहानी सिंधी में 'कहानी' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। लेकिन इन पंक्तियों के लेखक ने, अपने हिंदी अनुवाद में, शीर्षक बदलकर 'सुहागिन' रखा। 'सुहागिन" में श्री गोवर्धन की कहानी-कला अपने चरमोत्कर्ष पर है। यह एक जवान कुएं और एक जवान विधवा की कहानी है। श्री कमलाकांत वर्मा की हिंदी कहानी 'पगडण्डी' इसी टाईप की कहानी है। यहाँ "टाईप" शब्द दुर्बल है। 'पगडण्डी' और "सुहागिन' में केवल एक साम्य है, वह यह कि दोनों कहानियों में "कुआँ" एक पात्र है।

●

सुहागिन

गाँव के पश्चिमी छोर पर वही एक कुआँ था। गाँव की स्त्रियाँ प्रायः उस कुएँ से पानी भरने आती थीं। प्रातःकाल या संध्या के समय सूर्य जब अपनी लालिमा आकाश के नीले आँगन में छिटका देता था, तब कुएँ के आस-पास का वातावरण गाँव की अलबेली-नवेली छोकरियों की खिलखिलाहट और चूड़ियों की मधुर खनखनाहट से मुखरित हो उठता था। उन चंचल-चपल युवतियों का रूप-रंग और मदिर यौवन देखकर कुएँ के अन्दर का सुप्त जाग उठता था। उसके हृदय में विचित्र प्रकार की हलचल मच जाती, रसीले भाव की हिलोरें उठतीं। वह सोचता—"जाने क्यों, मुझ से कोई दो शब्द तक नहीं बोलती। सभी अपनी धुन में मतवाली हैं। आखिर

में हास-विनोद कर के चल देती हैं।" उसके दिल की तमन्नाएँ दिल ही में रह जातीं। वे अलबेली सुन्दरियाँ अपने-अपने घर चली जातीं और बेचारा कुआँ मन मसोस कर रह जाता।

यह नित्य का क्रम था। परन्तु एक दिन, जब रात-रानी का मणि-खचित अंचल गगन में फहरा रहा था, जब ऊँचे वृक्षों से पवन मधुर रागिनी छेड़ रहा था तब अकस्मात् आवाज आई— "छम् छमाछम्!" असमय यह छमछमाहट की मधुर ध्वनि कैसी! क्या कोई अप्सरा आकाश-पथ से नीचे उतर रही थी! कुएँ के तंद्रिल नयन आश्चर्य से खुल गए। उसने चारों ओर देखा। फिर वही संगीत-लहरी उठी—"छम् छमा छम्" और झाड़ियों के झुरमुट से एक मुग्धा अपनी कटि पर गागर रखे मंथर गति से कुएँ की ओर बढ़ी। वह नववधू थी!—माँग में सिंदूर, भाल पर बिन्दी, हथेलियों पर लाल मेंहदी और पाँवों में झनक-झनक बजनेवाली पायल। उसके शरीर पर रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्र शोभा पा रहे थे। रस्सी से बँधी गागर नीचे क्या पहुँची, कुएँ का हृदय उद्वेलित हो उठा। उससे रहा न गया और पूछ बैठा— "तुम कौन हो, सुन्दरी!"

नवयुवती ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखा। कुआँ मुस्कराया। उसने मधुर स्वर से पूछा— 'सुन्दरी! संभवतः तुम इस गाँव में नई आई हो। इससे पहले मैंने तुमको कभी नहीं देखा।'

'तुम ठीक कहते हो। अभी दो दिन पूर्व ही मैं यहाँ विवाहित होकर आई हूँ।" सुन्दरी ने मधुर कंठ से कहा।

"अभी दो ही दिन हुए हैं तुम्हारे विवाह को। फिर नव-विवा हिता होकर तुम स्वयं पानी भरने कैसे चली आई हो?"

सुन्दरी सकुचा गई। लाज से उसके गालों पर हजारों फूलों की लाली दौड़ गई। बोली— मेरे पति वृद्ध हैं। उनमें इतनी शक्ति कहाँ कि पानी भर सकें। घर में हम दो के सिवा और कोई नहीं।"

'क्या कहा! बूढ़ा पति? तुम्हारा एक बूढ़े से विवाह! यह कैसे?

सुन्दरी के नेत्र सजल हो उठे। करुण स्वर में बोली—"जी हाँ। चाँदी के चन्द टुकड़े देखकर मेरे पिता की आँखें चौंधिया गईं और उसने अपनी इकलौती बेटी को बलि के बकरे की भाँति कुछ रुपयों में नीलाम कर दिया।

कुआँ ठंडी आह भरकर बोला—"हमारे समाज की ऐसी ही करतूतें हैं। ओह! निर्दयी है यह समाज, निर्मम है इसकी व्यव स्थाएँ! ...परन्तु तुम इस समय...अकेली क्यों आई हो?"

'दिन के समय मैं घर से बाहर नहीं निकलती।"

'ऐसा क्यों?"

"मुझे शर्म लगती है कि कहीं सखी-सहेलियाँ या पड़ोसिनें मुझे चिढ़ायें और तंग करें।"

"हूँ।" कुएँ की शंका का समाधान-सा हुआ—"तुम्हारा नाम?"

'चम्पा...और तुम्हारा?"

"लोग मुझे पनघट कहते हैं।"

कुछ देर तक दोनों मौन रहे। चम्पा गागर भरकर चलने लगी तो पनघट ने प्रेम से पूछा—"फिर कब आओगी ?"

चंपा चुप।

"कल, इसी समय !" चम्पा ने उत्तर दिया और फिर वह छम् छम् करती हुई चली गई।

दूसरे दिन—

पनघट ने पूछा—"तुम उदास क्यों हो चम्पा !"

"बताओ तो, चम्पा ! क्या तुम अपने विवाह से असन्तुष्ट हो ? तुम्हारे पति पर तो लक्ष्मी की विशेष कृपा है। उसने तुम्हें सुन्दर वस्त्र दिये हैं, मनोहर आभूषण दिये हैं। स्त्रियों के लिये गहने और कपड़े ही तो सर्वस्व हैं !"

'तुम इस संसार के लोगों की तरह ही दुर्बल हो पनघट ! नारी के हृदय को अभी तक नहीं समझे हो। नारी अनमेल शादी नहीं चाहती। तनिक सोचो, जब इठलाती, बलखाती हुई सरिता मरुस्थल में प्रवेश करती है, तब मरुस्थल को सरस करने के बजाय स्वयं सूख जाती है। पनघट, मेरी अभिलाषायें, मेरी लालसाएँ, मेरे अरमान, मेरी उमंगें खिलने से पहले ही मुरझा रही हैं !"

"मेरी भी ऐसी ही दशा है चंपा !" पनघट ने गहरी वेदना से अभिभूत होकर कहा—"मैं भी चाहता हूँ कि कोई मुझसे दो मधुर बातें करे, मेरे सामने अपने हृदय का सारा स्नेह उड़ेल दे। किन्तु आज तक किसी सुन्दरी का प्यार मेरी ओर आकृष्ट नहीं हुआ। एक

मेरे तुम ही, जिसने हृदय में वर्षों से दबी हुई अभिलाषा को आशा की झलक दिखाई है। मुझसे सम्बन्ध रखोगी, चम्पा!"

"लेकिन तुम भी संसार की तरह स्वार्थी तो सिद्ध नहीं होगे!"

"मैं घोर स्वार्थी! उपकार करना ही तो जन्म से मेरा कर्तव्य रहा है। मैं संसार को अमृत देता हूँ।"

'दृढ़ संबंध रखोगे मुझसे पनघट! साथी वह जो संकट में साथ दे। मुसीबत में ही प्रेमियों और मित्रों की सत्यता की परीक्षा होती है।"

"चम्पा! मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ।'

'ठीक है। मैं प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ आऊँगी। तारों की छांह में तुमसे मीठी-मीठी बातें करूँगी।

इसके बाद प्रतिदिन रात को जब चम्पा का बूढ़ा पति अफीम खाकर नींद में बेसुध हो जाता तो चम्पा कमर पर गागर लिए पनघट के पास आती। दोनों में मीठी-मीठी बातें होतीं। इस तरह बातों ही बातों में वे अटूट प्रेम-सूत्र में बँध गए।

एक दिन चम्पा जल भरने के बाद शीघ्र ही लौटने लगी। पनघट ने किंचित आश्चर्य से पूछा—"यह क्या, प्रिये! अभी रात है शेष और बात है शेष..."

उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं।" चम्पा ने उदास स्वर से कहा—"कल से दमा का दौरा तेज हो गया है।"

पनघट कुछ न बोला। चम्पा चपला की तरह चमक कर चली गई।

और उसके पश्चात् वह कई दिनों तक पनघट पर नहीं आई। बेचारा पनघट रात होते ही गाँव की सड़क पर पलकें बिछा देता और चम्पा की प्रतीक्षा में रात भर जागता रहता। परन्तु वह न आई। पनघट ने सोचा—"संभवतः चम्पा कहीं चली गई।"

लेकिन एक आधी रात को वह चौंक कर जागा तो सामने जमीन पर उसने चम्पा को बैठा पाया। बिखरे बाल, सफेद मैली साड़ी ...और चूड़ियाँ गायब। वह घुटनों में मुँह छिपाकर सिसक रही थी। करुण कंठ से पनघट ने पूछा—"रो क्यों रही हो चम्पा?"

"मैं विधवा हो गई....मेरा पति चल बसा।"

"क्या कहा, चल बसा। कब?"

"आज सवेरे ......अब मेरा क्या होगा?"

"क्यों?"

"मैं निराश्रित हो चुकी हूँ। हाय, मेरे पनघट, देखो अभी तो पाँवों की मेंहदी तक नहीं छूटी है। क्या मुख लेकर मैं इस समाज में रहूँगी? मैं समाज की आँखों में गिर गई। स्त्रियाँ मुझे भाग्यहीन समझकर मुझसे खिंची खिंची रहेंगी। कामी कुत्ते मुझ पर आवाजें कसेंगे और अपनी कुत्सित इच्छाओं की पूर्ति के लिए अवश्य मार्ग अपमान को तैयार होंगे। वे मुझे सतायेंगे। मैं क्या करूँ? मेरा कोई सहारा नहीं रहा।"

"यह तुम क्या कह रही हो चम्पा? पागल न बनो। लौट जाओ अपने सम्बन्धियों के यहाँ।"

"सगे सम्बन्धियों के दरवाजे मेरे लिए बन्द हो चुके हैं,

पनघट ! विधवा पुत्री को उसका अपना पिता भी आश्रय देने से हिचकता है। मैं बेबस हूँ पनघट ! सिवा तुम्हारे मेरा कोई नहीं। इसीलिए आई हूँ तुम्हारे पास। तुम तो मेरे सच्चे साथी हो।"

"मैं !.......मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ!" पनघट ने हकलाकर कहा।

"शरण दो मुझे अपनी गोद में....

"क्या तुम आत्महत्या करोगी!" पनघट का माथा ठनका— "नहीं मैं तुम्हें आत्महत्या करने न दूँगा। आत्महत्या महापाप है।"

"मेरे लिए तो इससे बड़ा पुण्य कोई नहीं है पनघट ! समाज के ठेकेदार भेड़िये की भाँति मुझे दबाच लेने के लिए अपनी रक्तिम आँखों से घूर रहे हैं। बचाओ ! इन निर्मम निर्दयी हिंसक पशुओं के पंजों से मुझे बचाओ !

चम्पा ! मैं तुम्हें आश्रय तो दूँ लेकिन जानती हो इसका परिणाम क्या होगा ! संसार मुझसे मुँह मोड़ लेगा। मैं निर्मम रह जाऊँगा, सूना और वीरान हो जाऊँगा।"

'परन्तु तुमने मुझे वचन दिया था पनघट कि मुसीबत में मेरी मदद करोगे।'

"मैं विवश हूँ, चम्पा ! सोचो मैं तुम्हें आश्रय कैसे दूँ। तुम मेरी गोदी में समा जाओगी अंक में अंकित हो जाओगी तो मेरा अमृततुल्य जल तुम्हारे शव से मिलकर हलाहल हो जायगा। फिर गाँव के लोग यहाँ भूलकर भी न आएँगे, गाँव की सुन्दरियाँ मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखेंगी। धीरे-धीरे मैं सूख जाऊँगा

और मेरे निर्जीव शरीर में चमगादड़ अपना आवास बना लेंगे। नहीं, नहीं मैं तुम्हें आश्रय नहीं दे सकता।"

"बस! डर गए? बड़ा परोपकारी होने का दम भरते थे शेखी बघारते थे और अब...स्वार्थी कहीं के!...सोचा था कि इस अन्यायी संसार से मुक्ति पाकर सदा के लिए तुमसे एकाकार बाऊँगी, परन्तु तुम भी रसलोभी निकले! जब सारी-सारी रात तुम्हारे पार्श्व में बैठकर तुमसे बातें करती थी तब तो तुम बड़े-बड़े वायदे करते थे, किन्तु आज जब मैं अपना अस्तित्व तुम में लाने के लिए आई हूँ पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण करने के लिए आई हूँ तो तुम ऐसी बातें करते हो जैसे तुम्हारा मुझ से कभी कोई सम्बन्ध न था। सोचा कि तुम वैधव्य के अभिशाप को मिटाकर मुझे सुहागिन बनाओगे, अपने यहाँ जगह दोगे, लेकिन तुम भी मक्कार और कपटी सिद्ध हो रहे हो। परन्तु इसमें तुम्हारा क्या दोष? मैं विधवा जो हूँ। एक तिरस्कृत उपेक्षित नारी जो हूँ। मुझसे सभी लोग दूर भागते हैं। न जाने कौन-सा कलंक मेरे माथे पर लग गया है!"

चम्पा पीड़ा से कराह उठी। वह उठ खड़ी हुई। पनघट का हृदय काँप उठा। उसके हृदय में हलचल मच गई। काँपते स्वर में बोला, "ठहरो, चम्पा!"

"किस लिए?'

'मुझे सोचने दो!"

'अब सोचना कैसा? सोचा तो उस समय होता जब मुझ से सम्बन्ध जोड़ा था। अब मैं जा रही हूँ। फिर लौटकर नहीं

भाऊँगी। हाँ पनघट ! एक बात याद रखना, जब कभी मेरे सम्बन्ध में गाँव वालों की बेहूदी बातें सुना तो मुझे दोष न देना। अच्छा, मैं चली..."

पनघट के हृदय पर जैसे शीशियों हथौड़ों की चोट पड़ी। वह चिल्ला उठा— 'चम्पा, चम्पा ! लौट आओ चम्पा ! !"

"लौट आऊँ, क्यों ?"

आओ चम्पा ! मैं तुम्हें अपने में मिलाने के लिए तैयार हूँ, मैं तुम्हारे साथ रहने का तैयार हूँ। जानता हूँ कि इससे हम दोनों की मृत्यु अनिवार्य है परन्तु इस तरह की मृत्यु में अमृत का वास होगा। आओ चम्पा ! मेरे आलिंगन में बद्ध हो जाओ, प्राणों से प्राण मिलाओ।'

हर्ष से चम्पा की आँखें चमक उठीं। वह पनघट की ओर दौड़ी और कुएँ के पानी में छपाक का शब्द हुआ...

●

भूरी : श्रीमती सुंदरी उत्तमचंदानी

श्रीमती सुंदरी उत्तमचंदानी सिंधी के कथा-साहित्य में अद्वितीय स्थान रखती हैं। इनकी पैनी दृष्टि नारी-हृदय का कोना-कोना झाँक आई है। इनकी भाषा सशक्त और प्रवाहपूर्ण है। श्रीमती उत्तमचंदानी रचित दो उपन्यास "किरंदड़ दीवार" (गिरती दीवारें) और "प्रीत पुराणी रीत निराली" प्रकाशित हो चुके हैं। पहले उपन्यास का हिंदी अनुवाद सरस्वती प्रेस इलाहाबाद ने "रेखा" नाम से प्रकाशित किया है। सिंधी के प्रायः प्रत्येक कहानी-संग्रह में श्रीमती उत्तमचंदानी की कहानी रहती है। इनके कुछ एकांकी नाटक भी छपे हैं।

प्रस्तुत कहानी में दो अलग अलग वर्गों की नारियों के चित्र हैं। एक वह जो घर बैठ कर रीढ़ शिकायतों का ढेर लगाया करती है और दूसरी वह जो स्वाभिमान के साथ श्रम करती हुई सारे शहर के रास्ते छानती फिरती है। भूरी कमर्शील नारी-समाज की प्रतिनिधि है। लेखिका ने ठीक ही उसे "श्रमिक मक्खिका" के आभरण से विभूषित किया है।

भूरी

'अरी, इस तरह सीधे अंदर चली आई!
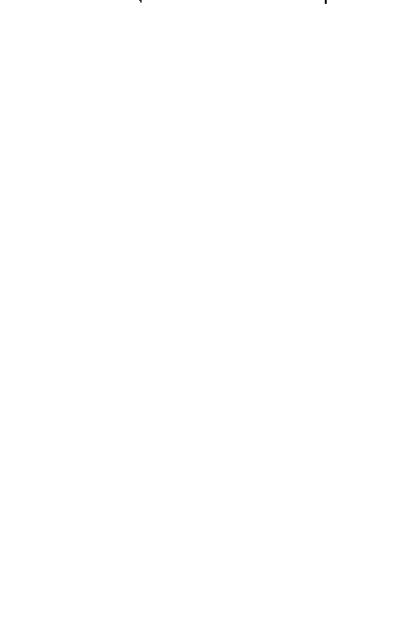
"बहन, पापड़ वाली हूँ!"

जो भी है, देखती नहीं कि कोई कपड़े बदल रहा है! सुनती है इस तरह दरवाजे पर जम कर क्यों खड़ी है!...और आप इस पापड़वाली की ओर क्यों देख रहे हैं! कपड़े बदलना भी भूल गए आप!"

'तुम तो मेघू हो न! क्यों, पहचान नहीं रहे क्या!"

' ... "

"मैं पापड़ बेच रही हूँ, क्या यह देखकर हैरान हो रहे हो!"

"आओ बैठो, मैं तो मेघू हूँ परन्तु तुम भूरी हो या लछमी यह समझ में नहीं आता!"

"लछमी तो मेरी बड़ी बहन है। मैं तो भूरी हूँ।...अरे वाह! कुर्सी तो बड़े मजे की है। यह तुम्हारी पत्नी है न!"

मेघू ने सिर हिलाकर 'हाँ' की।

"नहीं बहन, और मेरा पति, वह भी डेढ़-दो रुपये कमाता है।'

"बस डेढ़-दो रुपये !"

"भूरी, क्या करते हैं तुम्हारे पति !"—मेणू ने पूछा।

'हम जब बड़ौदा में थे, तब तो कपड़े की छोटी-सी दूकान थी। अब बीड़ियाँ बाँधता है। बीड़ियों से कमाई बहुत कम है इसलिए मैं पेडररोड, कोलाबा, दादर और इधर-उधर रोज लगभग तीस सेर पापड़ बेच लेती हूँ। डेढ़-पौन दा मैं भी कमा लेती हूँ—और यह लड़का ...देखो। अरे, क्या पापड़ क्यों खा रहा है !... बड़ा नट खट है। दो दिन न जाने कहाँ गायब रहने के बाद आज दीख रहा है मेणू !"

'कहाँ गया था यह दो दिन, माई !' सुशीला ने रूखे स्वर में पूछा।

'कहता है, दादर स्टेशन गया था।"

' खाना कहाँ से खाया !"

"मजदूरी कर ली थी।"

'धन्य हो तुम लोग। हमारा बच्चा घण्टा-भर को इधर उधर हो जाए तो जी में जी न रहे। न स्नान, न साबुन। शरीर पर मिट्टी जम रही है। हमारे बच्चे देखना, अभी पार्क से लौटेंगे। कितने साफ सुथरे होंगे।"

"बहन, वे साफ-सुथरे क्यों न होंगे ! मैं भी अगर सारा दिन घर में रहती तो इन्हें खूब सजाती। अब तो हाल यह है कि जैसा

तेरा मुँह में कौर डाल कर चल देती हैं। तो भी लड़कियों को स्कूल तक छोड़ ही आती हैं। इसका तो पढ़ने में चाव ही नहीं। कहता है—'तुम्हारे साथ चलूँ, मैं भी कमाऊँ। उस दिन इनकार किया तो भाग गया। लेकिन कल मास्टर से टाँगें तुड़वा के स्कूल में जरूर बिठा आऊँगी।'

"तेरे लिए तो अच्छा यह है कि बाहर न निकला कर। कोई लाल ला कमाती नहीं!'

'हम रे लिए यही बहुत है। किसी के मुहताज तो नहीं हैं। भीख ता माँग नहीं रहे।"

"बहुत है! भाई मुझे ता इनकी तीन सौ रुपया तनख्वाह भी कम मालूम होती है।" सुशीला समझने लगी कि इससे मूरी को अवश्य ईर्ष्या होगी। लेकिन मूरी की मुद्रा से पता चलता था कि तीन सौ रुपये अपने कमाए हुए उसके दो रुपयों के बराबर ही हैं।

"अच्छा बहन, यह रहे साढ़े तीन सेर पापड़। और कहो ता कल लाऊँ।"

'कल फिर क्या करूँगा? य ले अपने पैसे।

"अच्छा मेम—और पीरू, चल तराजू ले शाम हो गई।"

मूरी चली गई।

अरे कमाई तो बदल लें। पेट अपर बलिदान में ही बैठे रहे।'

"अरे, मैं तो कमाई बदलना ही भूल गया। लेकिन तुम इस तरह तिलमिला क्यों रही हो?"

"अच्छा-अच्छा, मैं तो तिलमिला रही हूँ। आपका दिल तो बहार-बहार हो गया न !"

× × × ×

"इतनी रात गये, जाग रहे हैं !"

"..... ....."

"आज आपको क्या हो गया है !"

"..... ....."

"सच-सच बतायें, जरा इधर देखिये। आपको मूरी याद आ रही है न !

"हाँ, मूरी के सम्बन्ध में ही सोच रहा हूँ। परन्तु तुम इतनी धैर्यहीन क्यों हुई जा रही हो !"

"मैं समझी। मूरी के सम्बन्ध में क्या सोच रहे हैं आप !"

"तुम नहीं समझ सकोगी !"

"समझायेंगे नहीं तो क्या खाक समझूँगी ! मैं भी मूर्खा ठहरी कि इस तरह पूछ रही हूँ। अच्छा, न सही। अब मैं सो जाती हूँ !"

सुशीला मुँह फेर कर सो गई।

"अरे, लेकिन सुनो तो—भला क्या समझा तुमने !"

"छोड़िए भी। मूरी आप पर जादू कर गई है न !"

"अरी, कहीं पागल तो नहीं हुई !"

"ठीक है, मैं पागल सही। इस तरह देख रहे हैं जैसे कुछ जानते ही नहीं। मैं तो कहती हूँ कि कवि से कभी विवाह नहीं

करना चाहिए। उसका मन सदा सुन्दर लड़कियों के गिर्द चक्कर काटता रहता है।"

"आज जरूर किसी बात पर बिगड़ी हो। नहीं तो ऐसा नहीं कहती। रंग-रूप में तो तुम इस मूरी से दस गुना सुन्दर हो।"

'रहम कीजिए। अपनी पत्नी चाहे उर्वशी या रम्भा ही की तरह क्यों न हो फिर भी घर की मुर्गी साग बराबर —"

"अब व्यर्थ न बनाओ। कवि तो क्या प्रत्येक मनुष्य सौंदर्य का प्यासा है। उद्यान में सुन्दर फूल देखकर क्या तुम आँखें मीच बैठती हो?"

"भला मूरी भी कोई सुन्दर फूल है! देख नहीं रही थी कि जब वह जा रही थी तो उसकी चाल देखकर आपका रोम-रोम शीतल हो रहा था।"

"सुशीला!"

"हाँ हाँ लाल-पीले क्यों हो रहे हैं! सच्ची बात कड़वी ही होती है।"

"पगली! वह किसी की पत्नी है। और तीन बच्चों की माँ!!"

"तो क्या हुआ! जब वह कुँवारी थी तो आपने दादी के कहने पर उससे शादी करने की रजामन्दी दिखाई थी। वह तो आपके अपने पिताजी ने समझाया कि आप शिक्षित लड़की लें। इसलिए अब पश्चात्ताप कर रहे हैं।"

"पश्चात्ताप कर रहा हूँ! दिमाग तो खराब नहीं हुआ! उस समय तो मैं एफ० ए० में ही था और पिताजी ने अच्छा ही किया।"

"अच्छी बात की तो फिर आज आप उस निर्धन भूरी में घूर घूर कर क्या देख रहे थे। बड़ी बात तो यह कि भूरी को देखकर आप रो पैठे। आप समझ रहे हैं कि मैंने आपके वे आँसू नहीं देखे। उनको आँखों में ही पी गये। अजी पत्नी, पति की दृष्टि को एक क्षण में ही परख लेती है।"

"अच्छा-अच्छा, अक्ल की दुश्मन! इसलिए तो कह रहा था कि तुम नहीं समझोगी।"

"फिर उसी बात पर आ गए। कुछ समझाइये भी तो।"

"सुशीला, तुमने अगर दो साल पहले वाली भूरी को देखा होता तो तुम भी शायद इस भूरी को देखकर रोती। वह गोल-सुडौल चेहरा नहीं रहा। मुँह की हड्डियाँ साफ दीख रही हैं। जो गाल कभी गुलाबी थे जिनकी पतली त्वचा के नीचे रक्त का संचार साफ दीखता था, आज वे सूख गये हैं। इसे देखकर मैंने पहले तो समझा, शायद इसकी बड़ी बहन रुपी है। फिर सोचता चेहरा-मोहरा तो भूरी का है। एक असमंजस में था। फिर सोचता, भूरी का रूप इस तरह कैसे बदल सकता है? वे कजरारे, मदवाले रतनारे नयन न रहे। पेट के गढ्ढे को भरने के लिए वह कड़कड़ाती धूप में इधर उधर फिरती है और इससे उसकी दूध-धुली चमड़ी ताँबा हो गई है। निर्ममता की लपट जब किसी सुन्दर पौधे को झुलसा देती है तो मेरा दिल टूक-टूक हो जाता है।"

"दिल...टूक...टू...क!"

"शील, जब नग्नी सरोज के कोमल शरीर पर शीतला अपने

अमिट चिह्न छोड़ गई थी, तब तुम कितना रोयी थी। क्यों रायी थी भला!"

" _ "

"मेरी शील जिस प्रकार सुन्दर घर, सुन्दर रास्ते, बाग, स्कूल किसी राष्ट्र के लिए गौरव की वस्तु हैं, उसी तरह सुन्दर मुख भी राष्ट्र के लिए गौरव है। फिर मूरी को इस देश के उद्यान में पूरी तरह खिलने से पहले मुरझाया हुआ और मसला हुआ देखकर चित्त दुःखी न होगा! बताओ तो!"

' __"

"सुशीला! क्या बताऊँ ..."

"आप चुप क्यों हो गए!... भला मूरी के आते समय आप इतने खुश क्यों दीख रहे थे!"

उस समय मैंने मूरी में एक दूसरी शोभा-सुन्दरता देखी।"

"उस समय फिर मूरी में कौन-सी सुन्दरता निखर आई थी जी! आप कवि लोग तो "

"मेरी प्यारी शील तनिक ध्यान देती तो तुम्हें भी वह सौन्दर्य मूरी में दिखाई देता। पहली मूरी की जगह पर आज एक स्वाभिमानिनी परिश्रमशीला मूरी पैदा हुई है। उसका रहन-सहन और वैदिक कर्तव्य नहीं देखा!"

"कुर्सी पर न आने किस अधिकार से आ बैठी मूई!"

"यही तो उसकी सुन्दरता है जिससे मेरा दिल बाग-बाग हो उठा। उसकी आत्मा उसको किसी मनुष्य के आगे हेय नहीं करती।

चुन्नू और मुन्नी

ज्ञान को जब निमन्त्रण-पत्र मिला तब वह उसे ध्यानपूर्वक देखने लगा। थोड़ी देर के बाद उसने सुनहरे अक्षरों में लिखे उस पत्र को बड़ी सावधानी से पढ़ना शुरू किया। सेठ हरीराम ने उसे यह पत्र शादी के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए भेजा था। ज्ञान की दृष्टि मोटे टाइप वाले अक्षरों पर पड़ी, जिससे प्रतीत होता था कि चुन्नू की शादी मुन्नी से होने वाली है। उसके चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई। उसने भावपूर्ण स्वर में कहा—"वाह! वाह! चुन्नू और मुन्नी नाम तो बड़े आकर्षक हैं। भला वह ठहरे अमीरों के बच्चे। चुन्नू-मुन्नी क्या! चीना-चीनी नाम हों तो भी सुन्दर लगेंगे। फिर उसे अन्य विचारों ने घेर लिया। 'शादी' शब्द पढ़कर उसके दिल को तीव्र धक्का पहुँचा। उसके चेहरे पर उदासी छा गई। वह अकेला था। मजदूर था। अपनी तमन्नाओं को दिल में दबाकर बैठा था। कई बार उसके दिल में ऐसी उमंगें उठी थीं कि इस एकाकीपन को दूर फेंक कर किसी को अपना जीवन-साथी बनाए।

इस प्रकार की उदासीनता को त्यागकर घर-गृहस्थी के आनन्दों का उपभोग करे। उसकी यह चिरसंचित अभिलाषा थी कि कोई उसे अपना कह कर पुकारे और अपने गले का हार समझे। वह किसी के प्यार में मस्त होकर अपने आप को भूल जाय। किसी को देख अपना सब कुछ लुटा दे। परन्तु यह 'परन्तु' उसके लिए बड़ा महत्व रखता था। वह संसार में अकेला था। बचपन में ही वह अनाथ बन चुका था। उसका बचपन बड़े कष्टों में बीता था। घर-घर की ठोकरें खाकर वह इस अवस्था तक पहुँचा था। उसने जीवन में कितने ही उतार-चढ़ाव देखे थे, कितने ही लोगों से मिल-जुल कर सांसारिक अनुभव प्राप्त किये थे। उसने अपने को जीवित रखने के लिए कितनी ही विपत्तियों का सामना किया था और उनमें वीरों की तरह अटल रहा था। कभी-कभी, वह जीवन से निराश होकर रो पड़ता था और कभी कभी आशा की किरण देखकर खुशी के फव्वारे छूट पड़ते थे। कभी तो चने चबाकर दिन काटता और कभी हलुआ और मोहनभोग के दर्शन होते।

इस प्रकार की कठिनाइयों को झेल कर वह अपने पैरों पर खड़ा हुआ था। अब, कुछ महीनों से वह सेठ हरीराम के यहाँ नौकरी में था और मालगुदाम की रखवाली करता था। लोगों का माल पहुँचाता और कुछ दफ्तर का कार्य भी करता।

वह खास लिखा-पढ़ा तो नहीं था। हाँ यही दो-चार दर्जे अवश्य पढ़ा था, जिससे अपना काम निकाल लेता था। वह रहता गुदाम में ही था। उसकी तनख्वाह, बस यही चन्द चाँदी के चंद टुकड़े, जिससे

वह अपना गुजारा कर लेता था। ऐसी अवस्था में वह किससे शादी करे? कौन-सा बाप अपनी कन्या ऐसे को देना चाहेगा? एक-दो जगह पर सगाई की बात चलाई थी पर उधर निराशाजनक मिला था। कौन उस आवारा और घुमक्कड़ को अपनी कन्या देगा? कुछ सज्जनों ने कहा था कि उसके पास अगर रहने की जगह और धन-सम्पत्ति हो तो शादी कराई जाय। परन्तु उसके पास तो दोनों में से एक भी न था। मालग्राम में रहने के लिये तो कोई कन्या अपनी नहीं देगा? ज्ञान के पास फूटी कौड़ी भी न थी। वह कहाँ से जगह लेगा और कहाँ से अपनी गृहस्थी चलायेगा? ज्ञान उस समय कह देता "ईश्वर सबका रक्षक है अगर बाँहुओं में बल है तो लड़की अपने आप दौड़ती आयेगी।"

वह अचानक चौंक उठा—"हैं! यह क्या? मैं तो मन के लड्डू खाने लगा और यह शुभ-पत्रिका तो हाथ में ही धरी रही।" उसने सोचा, "शादी पर अवश्य जाना पड़ेगा। सेठ के यहाँ का निमन्त्रण है, अतः वहाँ जाना अत्यन्त आवश्यक भी है।" चाहे दूसरों की शान देख उसके हृदय पर साँप लोटता हो जाना तो पड़ेगा ही। वह सोचने लगा ऐसे शुभ अवसर पर क्या पहना जाय? उसके पास सूटबूट व रेशमी कपड़े तो थे ही नहीं अतः उसने खद्दर के कपड़े पहन कर चलना ही उचित समझा। उसका सेठ भी तो खद्दर पहनता है यद्यपि वह कैडलाक मोटर में चढ़ता है। शरीर तो खद्दर से ढँका हुआ रहता है। उसने सन्दूक से खद्दर के कपड़े निकाले और ऊपर से जवाहर जाकट पहन कर पैरों में पुराने चप्पल डाले और सेठ के बंगले की ओर चल पड़ा।

यह टिकट लेकर गाड़ी में आ बैठा। उसकी विचारधारा फिर गुड्डू-मुन्नी की शादी की ओर बहने लगी। उसने सोचा, आज गुड्डू और मुन्नी की, हृदय में बरसों की संचित अभिलाषाएँ पूरी होंगी। वे एक दूसरे को पाकर आनन्दित होंगे। वे एक दूसरे को प्यारभरी नजरों से देखने लगेंगे और प्यार का नशा पीकर मस्ती में झूम उठेंगे। आज का दिन उनके लिये अमूल्य दिन होगा। आज वे दूल्हा और दुलहन के रूप में दिखाई देंगे। जीवनभर एक दूसरे के साथी बन कर रहने की प्रतिज्ञा करेंगे। वे कुछ सकुचाएँगे और अपनी आँखें जमीन में गाड़े वेदी की चौकी पर बैठेंगे। पर आजकल तो जमाना बदल गया है। अब घूँघट की प्रथा नहीं रही लड़कियाँ सिर ऊँचा कर के बैठती हैं, और यह एक प्रकार से ठीक भी है। लड़की मुँह नीचा किए कब तक बैठ रहेगी? उसकी कमर ही झुक जाती है। घूँघट निकाल कर बैठने से मनुष्य एक विचित्र पशु लगता है। यदि मेरी शादी हुई तो मैं अपनी पत्नी का मुँह खुला रखूँगा। उसके दिल में गुदगुदी पैदा होने लगी। चित्त दोलायमान होने लगा। उसे ऐसा भान पड़ा कि किसी ने उसकी पात का भौंर किया है। और उसके कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ गई। लेकिन, शीघ्र ही उसने अपने आप को सम्भाला और मुस्कराने लगा। फिर वह विचारधारा में बहने लगा। उसने सोचा— 'मेरी शादी होगी कैसे? गुड्डू और मुन्नी की शादी तो हो गयी। उन्हें बहुत-सा धन मिला होगा। सेठ हरीराम मगर का एक लखपती सेठ है। किसी साधारण आदमी से तो नाता जोड़नेवाला नहीं।

एक लाख तो अवश्य मिला होगा। उसके साथ मोटरगाड़ी, बँगला बाग बगीचे आदि भी। धनियों के लिये लाख तो मिट्टी के समान है। मेरे पास यदि एक हजार भी होता तो शादी अवश्य हो जाती। किसी गरीब बाप का हृदय मेरी ओर आकर्षित हो तो कहना ही क्या! यह आवारापन मिट जाय और जीवन स्थिर हो जाय। रूप रंग में तो कोई कमी नहीं केवल लक्ष्मी की कृपा चाहिए। परन्तु यह एक आध हजार की रकम प्राप्त कहाँ से हो? सेठ से कुछ उधार लेकर छोटा-मोटा धन्धा शुरू करूँ। एक वर्ष के भीतर एक-आध हजार बनाना कोई बड़ी बात नहीं है। इसके बाद कोई छोटी सी दूकान खोल दूँ। फिर दो-तीन हजार सहज में ही बन जायेंगे। और फिर तो हरेक सलाम करेगा। उसकी दृष्टि सामने बैठे हुए सज्जन पर पड़ी, जो उसे देख कर मुस्करा रहे थे। ज्ञान लज्जित हो गया। उसने समझा कि उस व्यक्ति ने उसके दिल का हाल जान लिया है। गाड़ी स्टेशन पर रुकी और वह झट से गाड़ी से उतर पड़ा।

× × × ×

सेठ हरीराम का अपना बंगला था। शादी का उत्सव बगीचे में किया गया था। रंग-बिरंगे फूलों गुब्बारों और तोरण-बन्दनवारों से आँगन को सजाया गया था। मोटरों की कतारें बाहर खड़ी थीं। फाटक पर शहनाई की मधुर ध्वनि आगन्तुकों को बड़ा आनन्द दे रही थी। आँगन में मेजें और कुर्सियाँ पड़ी थीं जिन पर मेहमान लोग विराजमान थे। इस तड़क-भड़क और सज-धज को देख कर ज्ञान दंग रह गया। वह इस समारोह को देख कर पानी-पानी हो

गया। तितलियों की तरह नाचती-कूदती युवतियाँ जो नैलॉन की चोलियाँ और सितारों से चमचमाती हुई सुन्दर साड़ियाँ पहने हुए थीं, दर्शकों का मन मोह रही थीं। शार्कस्किन तथा पिकनिक से बने सूट भी नवयुवकों को खूब फब रहे थे। क्रीम पाउडर लिप स्टिक, इत्र आदि की सुगन्ध से दिमाग तरोताजा बन रहा था। आँखों में काजल लगाए होंठों व गालों में लाली पोते और अध खुली छाती बाहर निकाले युवतियों का मचल-मचल कर चलना, मनचले नवयुवकों को मन्त्र-मुग्ध कर देता था। वह हाथों में मुस्कराना, कमलियों से फूँकना बार-बार अपने पर्स से पाउडर निकाल कर मुँह पर लगाना, बात-बात में हल्की सी मुस्कुराहट और अपने दामन को बचा कर कुर्सी पर बैठना—देखनेवालों की आँखों को चौंधिया देता था। ज्ञान हक्का-बक्का रह गया। उसकी समझ में न आता था कि वह क्या करे ? वह अपने को तुच्छ एवं निकृष्ट मानने लगा। उसका दिल वहाँ से लौट चलने को हुआ। लेकिन यह उचित न था। वह इसी उधेड़बुन में वहाँ खड़ा रहा। आखिर, अपनी कमजोरी को छिपा कर, दिल में साहस बटोर कर दीन-दुर्बल अवस्था में वह एक खाली मेज के आगे पड़ी कुर्सी पर बैठकर कुछ सोचने लगा।

भोज आरम्भ हो चुका था। एक के बाद दूसरा खाना आ रहा था। देशी विदेशी, दोनों प्रकार का भोजन था।

भोजन पर बच्चे बूढ़े, औरतें, मर्द सभी जुटे हुए थे। पूरी-कचौड़ी, चाय-बिस्कुट, केक, आइसक्रीम, लेमन, सब प्रकार की चीजें वहाँ मौजूद थीं। ज्ञान, यह सब देख व्याकुल हो उठा। शादी की

कहाँ हैं। दूल्हा-दुल्हिन का तो पता ही नहीं। अभी तक तो सभी भोजन में जुटे थे। किसी को उनका ध्यान ही न रहा था। अब सब लोग उनकी प्रतीक्षा में आँखें बिछाए बैठे थे।

इतने में लहर के वस्त्र पहने सेठ हरीराम खड़े हुए; और आये हुए सज्जनों का अभिनन्दन कर बोले—"मेरे प्यारे सज्जनो! आपको खबर तो होगी ही कि हम यहाँ क्यों इकट्ठे हुए हैं!" पास में बैठे हुए एक नवयुवक ने अपने एक साथी के कान में कहा—'यार, हिन्दी तो खूब बोलता सेठ" और वह मुस्करा दिया।

फिर सेठ ने बोलना आरम्भ किया—

"सज्जनो! मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ, जो आपने कृपा करके यहाँ आने की तकलीफ उठाई है। इस जगत में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। वह लक्ष्मी की मेहरबानी रह जाती है। इस माया पर कोई भरोसा नहीं, फिर क्यों न आप जैसे सज्जनों की सेवा कर अपना जन्म सफल कर दूँ। आपने अभी प्रसाद पाया है और आपको अभी दूल्हा-दुल्हिन देखने का इन्तजार होगा। मेरी आप लोगों से विनय है कि आप हाल में चल कर पधारें। वहाँ आप उनके दर्शन करेंगे। और, वहाँ आप अपने हाथों से उन्हें पुष्पमाला पहिनाएँ।"

सब लोग हाल में जाने के लिए प्रस्तुत हुए। मैं भी तेजी से कदम बढ़ाता हुआ पहुँचा। सेठ हरीराम न हाल में जाकर मंच पर खड़े होकर कहा, "ये हैं गुड्डू और गुड्डी मेरे छोटे बेटे देवेन्द्र के खिलौने, गुड्डा और गुड्डी, जिनकी शादी में सम्मिलित होकर आप लोगों ने उत्सव की शोभा बढ़ाई है और इस सेवक पर अपार कृपा की है!"

राजा — श्री उत्तम

श्री उत्तम अपने में तो सिंधी की एक संस्था हैं। उत्तम की पत्नी श्रीमती सुन्दरी उत्तमचन्दानी कथाकार ही हैं। लेकिन उत्तम पहले समालोचक हैं, फिर कथाकार। यों तो हर साहित्य जीवन की समालोचना है। परन्तु समालोचक उत्तम की कहानियों में जीवन की आलोचना अपेक्षाकृत अधिक उभरी हुई मिलती है। मासिक 'नई दुनिया' के सम्पादक हैं।

उत्तम की 'राजा' एक विचारप्रधान कहानी है। राजा अच्छा जीवन बिताना चाहता है। लेकिन नौकरशाही के निर्जीव और निर्मम नियमों ने उसे फिर अंधेरे में ढकेलने के लिए छोड़ दिया।

कहानीकार कलासिद्ध है। उसने कहानी उस स्थान पर खत्म की है जहाँ प्रश्न चिह्न अपने विशालतम रूप में खड़ा हुआ है। पाठक समस्या का निदान सोचने के लिए बाध्य हो जाता है। यही कहानी की खूबी है।

●

रा
जा

बहुत दौड़-धूप के बाद मुझे क्लर्क की नौकरी मिली।

नौकरी के पहले दिन कार्यालय पहुँचा तो सिर्फ़ एक आदमी ने
खुश होकर मेरा स्वागत किया। वह था हमारा महाराष्ट्रीयन चप
रासी राजा। राजा के स्वागत का अर्थ मैंने बाद में समझा, जब एक
दिन वह मेरे पास अपनी छुट्टी की अर्जी लेकर आया। उसने
बहुत-सी बातें कीं। बातों-ही-बातों में पूछा—"बाबू, आप तो विवा
हित होंगे?"

"हाँ!"—मैंने आश्चर्य के साथ उत्तर दिया।

"बाल-बच्चे भी होंगे?"

'कुछ नहीं, वैसे ही?"

उसके कहने के ढंग से साफ़ जाहिर था कि दाल में कुछ काल
है और वह ठीक बात बताना नहीं चाहता। लेकिन मैं उसे ऐसे
छोड़नेवाला नहीं था। आखिर उसने हँसते-हँसते कहा—"आपक

जगह पर जो क्लर्क काम करता था, वह तीस बरस का था, फिर भी अविवाहित था। कुछ दिन पहले जब मैंने अपनी स्त्री की बीमारी की वजह से छुट्टी की अर्जी दी तो उसने मुझे बहुत तंग किया। अगर वह विवाहित होता तो कभी भी ऐसा नहीं करता।"

"अच्छा, यह बात है। तुम्हें मुझसे भी यही डर था!"

"जी हाँ!"—उसने झिझककर कहा।

"कोई बात नहीं, वैसा नहीं होगा।"—मैंने उसे विश्वास दिलाया। मुझे राजा की सीधी-सादी बातें दिलचस्प लगीं। मैंने उसका दिल रखने के लिए पूछा—"तुम्हारे कितने बच्चे हैं?"

"दो।"

"और तुम्हारी उम्र क्या है?"

"इक्कीस वर्ष।"

"शादी के समय तो तुम बहुत छोटे होगे?"

"ठीक कहते हो, बाबूजी! हम बाबू लोगों की तरह अपनी जवानी को लाँघकर शादी नहीं करते।"

कहकर राजा काम से चला गया। परन्तु उसकी सरल और मासूम बातें मेरे कानों में गूँजती रहीं। जब उसकी छुट्टी मंजूर हुई तो वह हँसता-हँसता मेरे पास आया। कहने लगा—"आप बहुत अच्छे आदमी हैं।"

मैंने भी हँसते-हँसते उत्तर दिया—"बहुत अच्छे!"

"सच कहता हूँ!"

"कैसे?"

'आपसे पहले जो यहाँ क्लर्क था, वह छुट्टी नामंजूर कराने की कोशिश करता था।"

"क्यों ?" मैंने हैरत से पूछा।

'बात यह है कि एक बार मैंने उसका और एक दूसरे क्लर्क का निजी काम करने से इन्कार कर दिया था और कहा था मैं आपकी नहीं बल्कि सरकार की तनख्वाह खाता हूँ। आप भी मेरे जैसे सरकारी नौकर हैं। उसके बाद तो उन्होंने मुझे बहुत परेशान किया।"

"लेकिन तुमने सच ही कहा था। वे भी तुम्हारे जैसे नौकर ही थे और नौकर तो सब समान होते हैं।"

राजा ने एक ठहाका मारा– 'वाह-वाह, नौकर तो सब एक-से ही हैं। —और फिर गम्भीर हो गया– बाबूजी, जरा देखना, कहीं तुम पर भी वही रंग न चढ़ जाय। जैसे भँवरा कीड़े के चारों ओर चक्कर लगा कर उसको भी अपने-जैसा बना देता है, वैसे ही यह बेजान सरकारी नौकरी भी आदमी को फाइलों के चक्कर में फँसा कर भावहीन बना देती है। आप तो बाबूजी, नहीं बदलेंगे न ?'

"नहीं तुम्हारा यह बाबू नहीं बदलेगा!"—मैंने हँस कर जवाब दिया।

राजा का यह नाम किसने दिया मालूम नहीं। मगर वह सचमुच 'राजा' बादशाह था। बड़ा साहसी चपरासी था वह। चतुर भी एक ही था। वह किसी की जी हुजूरी नहीं करता था। और बड़ी से-बड़ी सच बात कहने में भी नहीं हिचकिचाता था। इसलिए वह लोगों की आँखों में खटकता था। अफसरों ने भी किसी-न-किसी

बहाने अब तक उसकी नौकरी को स्थायी नहीं होने दिया। फिर भी राजा ने सच बात कहने की आदत नहीं छोड़ी।

मेरी नौकरी का एक साल तो शान्ति से बीत गया। इस बीच मेरे जीवन में कितने ही परिवर्तन आये। हम तीन से चार हुए। सुना है कि हर बच्चा अपने साथ अपना भाग्य लेकर आता है। परन्तु हमारे पास नया बच्चा छँटनी की मुसीबत लेकर आया।

चारों ओर सरकारी दफ्तरों में छँटनी शुरू हुई। राज्य-मंत्री अफ़सरों को बुलाकर दबाने लगे कि कर्मचारियों को डर तक बैठाकर अधिक-से-अधिक काम लें। अफ़सर लोग क्लर्कों को छँटनी का डर दिखा कर उनसे ज्यादे-से-ज्यादा काम लेने लगे। पुराने कर्मचारी भी अफ़सरों से भूखे बच्चे की तरह चौंकने लगे। मैं तो नया क्लर्क था। बी० ए० पास करने के बाद एक अर्से तक भटकने पर यह नौकरी हाथ लगी थी। छँटनी की लटकती तलवार ने मुझे चिन्तित कर दिया। मैंने भी औरों की तरह अफ़सरों की खुशामद शुरू की। अपनी नौकरी को सुरक्षित रखने के लिए हर उपाय से काम लेने लगा। नन्ही बेबी के दूध चाटनेवाले होंठ मुझे हमेशा याद रहते और मैं दफ्तर में देर-देर तक बैठ कर काम करता रहता।

एक दिन राजा छुट्टी की अर्जी लिये आया और बोला—"बाबू, मेरी यह छुट्टी तो मंजूर करा दो।"

"मेरी छुट्टी तो मंजूर करा दो।"—मैंने उसकी हँसी उड़ाने के लिए उसके ही शब्द दुहराये।

राजा ने मुस्कराते कहा—"हाँ, आप मंजूर करा दें।"

"छुट्टी मंजूर करना तो हमारे हाथ में नहीं है। अफसर के हाथ में है!"

"पहले तो आप अफसर के हाथ में था। अब तो अफसर बीमार है, नहीं तो क्या करता!"

राजा के इस वाक्य में मेरा दुखा अंग हृदय में प्यार के अपमान चुभ गया। मैं गुस्से से लाल हो गया—"क्या अफसर हैं या हम क्या करें! जाओ या यहाँ से—"

राजा गया नहीं, दुखी नजर से मेरी ओर देखने लगा। मैं अपने काम में व्यस्त हो गया। थोड़ी देर बाद वह जाते-जाते कह गया—"बस, बाबूजी! आप भी दूसरों के रंग में रंग गये न! अच्छा, आज से मैं कभी आपसे कुछ न कहूँगा!"

मैंने क्रोध से राजा की अर्जी पर ऐसा नोट लिखा कि उसकी छुट्टी मंजूर न हुई।

लेकिन उसके लिए छुट्टी मंजूर होना न होना एक ही बात थी। वह चुपचाप गाँव चला गया। हमने जब उसको नौकरी पर आने के लिए लिखा तो उत्तर आया कि उसका लड़का अच्छा हो जायगा, तब आयगा। और वह जब नौकरी पर लौटा तो उसको चेतावनी दी गयी कि अगर तू फिर कभी इस तरह बिना छुट्टी मंजूर कराये घर जायगा तो कानूनी कार्रवाई की जायगी, तुझे बरखास्त कर दिया जायगा।

लेकिन राजा पर उसका कोई असर न पड़ा।

आखिर मुझे जी-हजूरी का फल मिल ही गया। मुझमें उन्नति

दो हफ्तों के हक दबाकर मेरी नौकरी स्थायी कर दी गयी। साथ ही मेरी बदली दूसरे विभाग में हो गयी, जहाँ मुझे तरक्की भी मिली।

राजा से अब किसी भी बहाने मुलाकात नहीं होती थी। भला इसकी आवश्यकता ही क्या थी! जिस तरह मेज पर फाइल का भर थोड़े समय बाद चली जाती है, उसी तरह आदमी भी आँखों के सामने से गुजर जाने के बाद याद नहीं आते। काम भी इतना था कि किसी बात पर विचार करने का अवकाश नहीं मिलता था।

एकाएक एक दिन, साहब, सलाम! सुन कर जो मैंने आँख ऊपर उठायी तो अपने सामने राजा का खड़ा देखा।

'बाबू जी, अब सदा के लिए मैं बिदा लेता हूँ।"

मैंने कुर्सी पर टेक लगाकर कहा—"सदा के लिए बिदा, क्या मतलब?"

"आपकी कृपा से मुझे नौकरी से निकाल दिया गया है।" उसके चेहरे पर व्यंग की हँसी खेल रही थी।

'मेरी कृपा से। यह कैसे?'

"आपको याद तो होगा कि एक बार जब मेरी छुट्टी मंजूर न हुई तो मैं मंजूरी के बिना ही गाँव चला गया था। तब आपने मेरे खिलाफ ऐसा नोट लिखा था जिससे मुझे लौटने पर चेतावनी मिली थी। और आज दो वर्षों में दो दफा मंजूरी के बगैर छुट्टी पर जाने के कारण मुझे डिस्चार्ज कर दिया गया।"

"परन्तु तुमने ऐसा किया ही क्यों?"

"ऐसा न करता तो क्या करता? आपको तो मालूम ही है कि

हमारे जैसे नौकरों को छुट्टी के लिए खिलवा तक किया जाता है। एक बार अपनी स्त्री की बीमारी के कारण छुट्टी के लिए लिखा तो मुझे उसका कुछ उत्तर ही नहीं मिला। दूसरी बार छुट्टी मंजूर नहीं की गयी। अब आप ही बताइए कि मैं अपनी बीमार स्त्री और बच्चे को गाँव में अकेले कैसे छोड़ सकता था! वे बीमार पड़े रहें और मैं यहाँ दफ्तर में बैठा रहूँ, यह कैसे हो सकता है!"

यह सुनकर मेरे दिल में एक दर्द-सा उठा और बीते हुए दिनों की कुछ तसवीरें मेरे सामने नाचने लगीं।...जाड़े के दिन थे। मेरी पत्नी बीमार बच्चे को बाँहों में लिये हर शाम मकान के द्वार पर खड़ी मेरा इन्तजार करती। जब मैं दफ्तर से देर से लौटता तो वह कहती, इस मासूम बालक की खातिर तो दफ्तर से जल्दी लौटा करें। लेकिन मैं मजबूरी से कहता—क्या करूँ! बेरोजगारी और छँटनी के इस जमाने में दफ्तर में देर-देर तक बैठकर काम पूरा करना ही पड़ता है। यह उत्तर सुनकर वह खामोश हो जाती। आखिर एक दिन ऐसा भी आया, जब कि मेरी स्त्री, नन्हें-मुन्ने की निर्जीव देह प्राणों की ही तरह हाथ में लिये आँसूभरी आँखों से मेरी राह देख रही थी।...

मैं दुःख के सागर में मालूम नहीं कब तक गोते लगाता रहता कि राधा ने खामोशी तोड़ी— "बाबूजी, जिन बाल बच्चों के लिए कमाना पड़ता है वे ही नौकरी के कारण खतम हो जायें तो ऐसे कमाने से क्या फायदा!"

मैंने कहा—"तुमको मालूम नहीं, हमारा साथी कुछ पहले जब

क्या कहता है! यह कहता है, आजकल जी और सभी सहज ही मिल जाते हैं, लेकिन नौकरी रानी बहुत कठिनाई से मिलती है!"

राजा एक बेपरवाह हँसी हँस उठा—"ऐसे विचार आप जैसे बाबू लोग ही रख सकते हैं। हमें तो चार पैसे किसी भी नौकरी या हाथ के हुनर से या मजदूरी से मिल जाते हैं। नौकरी न की, मजदूरी की, एक ही बात है। हम अपनी मेहनत से कहीं भी चार पैसे कमा सकते हैं!"

"हाथ का हुनर!' —मैंने पूछा—' इसके माने तो ये हुए कि तू इस नौकरी से पहले कोई धन्धा करता था!"

"कुछ ऐसा ही समझ लें। मगर यह कोठी-कारखानों वाला धन्धा न था, मकड़ी शराब बनाने का धन्धा था!"

यह सुन कर मेरे चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और ऐसा लगा, मानो राजा के गम्भीर चेहरे के पीछे कोई गुण्डा छुपा बैठा है, जिसके सारे शरीर से शराब की बू आ रही थी।

राजा ने शायद मेरी हिचकिचाहट भाँप ली। गर्दन नीचे करके बोला— "लेकिन मैंने नहीं चाहा कि मेरे मासूम बच्चों के जीवन में इस धन्धे की बू रेंग कर घुसे और उनकी जिन्दगी जेल की काल कोठरियों में पनपे। इसीलिए यह धन्धा छोड़ कर यह नौकरी की। मगर यह बजाज सरकारी कारोबार यह सब कुछ कैसे समझ सकता है!"

राजा ने जब अपनी आँखों को हाथ से पोंछ कर गर्दन उठायी तो मैंने महसूस किया कि मेरे सामने गुण्डा राजा के बदले गरीब लेकिन गैरतमन्द राजा खड़ा है, जो अच्छा जीवन बिताना चाहता था।

भिखारी रानी : सन्तदास मंघानी

श्री सन्तदास जयहिन्द कालेज दिल्ली में सिंधी के लेक्चरर हैं। सिंधी साहित्य का विस्तृत अध्ययन होने के कारण इनकी रचनाओं में अनायास ही साहित्यिक कृतियों के संदर्भ और प्रसंग आ जाते हैं।

'भिखारी रानी' एक सिद्धहस्त कहानीकार की रचना नहीं है। लेकिन यह उस लेखक की कहानी है, जिसका नाम सिंधी-गद्य-साहित्य में अमर रहेगा। इनकी कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समुचित स्थान पाती रही हैं।

प्रस्तुत कहानी रानी के मन का विश्लेषण है। यह एक रानी का चित्र नहीं है। अनगिनत रानियों का चित्र है। रानी में जो चारित्रिक दुर्बलता मिलती है, वह ऐसी अवस्था और परिस्थिति की प्रत्येक नारी में मिलेगी। जिस हालत से रानी गुज़र रही है उस हालत में शायद हर कोई ज्योतिषी से जानना चाहेगी कि उसकी राह का रोड़ा कब हटेगा।

इस कहानी में ज्योतिषियों के मिथ्या-जाल पर भी बड़ी निपुणता से फब्ती कसी गई है।

•

बिचारी रानी

वह उन दिनों की बात है जब मुझे अपनी भाभी के दुखद देहान्त का समाचार मिला। मैंने अपने पति से कहा—"क्या ही अच्छा हो यदि हम भाभी के अवशेष-चिह्न, उसकी इकलौती बेटी को अपने यहाँ रखें और उसकी देख-रेख करें।" मैंने अपनी उस चचेरी बहन को केवल एक बार देखा था—वह भी बहुत साल पहले—और आज भी उसका रूप-रंग मेरे आगे स्पष्ट न था। संभवतः उसका नाम रानी था। अन्तस् से एक आवाज उठती थी और उस आवाज की यह माँग थी कि हम उस अनाथ लड़की की सहायता करें और उसे उस स्थिति से बचाएँ जो निर्धनता की अवस्था में असीम और बेबस लड़कियों की प्रायः हो जाती है। मेरी बात सुन कर पहले तो उन्होंने तनिक नाक-भौं सिकोड़ी और कहा—"किसे !

सब कहने के लिए किसी उपयुक्त अवसर की खोज में था। अच्छा हुआ कि इस सम्बन्ध में तुम्हारी भी यही राय है।"

दूसरे दिन उन्होंने रानी को अपने मन की बात बता दी। रानी का चेहरा निष्प्रभ-सा हो गया। पतिदेव ने उससे यह भी कहा—"रानी, हो सके तो तीन महीने के अन्दर तुम अपनी नौकरी और निवास की व्यवस्था कर लो। मुझे दुःख है कि आज मुझे यह सब कहना पड़ा।" रानी मौन रही। अब तो खुद पतिदेव भी उसकी नौकरी की तलाश करने लगे।

एक महीना हो गया। रानी अब मुझसे सर्वथा विमुख-सी रहती थी। मानो हम दोनों अपरिचित हों। इस वर्ष संयोग कुछ ऐसा बन पड़ा कि पतिदेव हमें कार्याधिक्य के कारण मसूरी नहीं ले जा सके। चि० रमेश को तो मैंने मामके भेज दिया कि गर्मियों की छुट्टियाँ वह वहीं व्यतीत करे। इधर पतिदेव हमें कभी-कभी कार में बिठाकर यहाँ-वहाँ की सैर करा लाते।

रविवार को एक सुबह उन्होंने नदी की सैर का प्रस्ताव रखा। दरअसल, उन्होंने यह प्रस्ताव बाहरी मन से रखा था। उन्होंने यह समझा कि अन्य प्रस्तावों की भाँति रानी इसे भी नहीं मानेगी। पर यह क्या! रानी ने तत्काल हामी भर दी। यही नहीं, उसने वहाँ नहाने के लिए कपड़े इत्यादि भी साथ ले लिए।

रानी का मूड पूर्ववत् नहीं था। आज वह हँसी दिल्लगी में बराबर भाग ले रही थी। उसने ज्योतिषी के शब्द कह सुनाए और फिर वह खिलखिला कर हँस दी। मेरे पति ने भी हँसकर कहा—"यह

अच्छा हुआ कि तुम्हारी मोटी बुद्धि ने इस कथन की मूर्खता जान ली। सुबह का भूला शाम को घर लौट आए तो वे भूले नहीं कहलाते।" रानी ने कहा—"हाँ, अब तो ज्योतिषी की उस थोथी बात पर मेरा ज़रा भी यकीन नहीं रहा। अगर यकीन हुआ है तो इस बात का कि यदि मनुष्य चाहे तो स्वस्थ और सुखी जीवन को भी एक क्षण में समाप्त कर सकता है।"

मैंने आश्चर्य से पूछा—"वह कैसे?"

रानी ने मुसकुराहट को गंभीर बनाकर कहा—"बड़ी सरलता से। क्या तुम्हें याद है कि एक दिन मैंने तुम्हें मेज की दराज में पड़ी एक चीज दिखाई थी?"

वास्तव में मैं उस चीज को भूली नहीं थी। उस चीज का स्मरण कर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। चीज थी—एक पुड़िया जिसमें कैप्सूल में बंद काला जहर पड़ा हुआ था। बातों ही बातों में रानी ने कहा था—"यह जहर पानी या अन्य तरल पदार्थ में घुलकर काला रंग त्याग देता है और सफेद रंग का हो जाता है। इसका प्रभाव इतना विनाशकारी है कि यह झट हृदय तथा अन्य अंगों को निष्क्रिय बना देता है।"

मैंने हड़बड़ा कर पूछा—"भगवान न करे कहीं तुमने आत्महत्या करने का विचार तो नहीं किया है!"

उसने मेरे बालों को सहलाते हुए कहा—"भला मैं क्यों यह सब करने लगी। चल!'

बातों ही बातों में हमने विमटो का दूसरा गिलास भी पी डाला।

पर मेरे सिवा अन्य किसी ने उस गिलास को हाथ नहीं लगाया था। मैं निःशंक हो गई।

थोड़ा इधर उधर टहलने के बाद हम तीनों नदी के पानी में उतरे।

पर यह क्या! थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा कि पतिदेव बड़ी जल्दी से तैरते हुए मेरी तरफ आ रहे हैं। मैं घबड़ा गई। समीप आकर उन्होंने मुझसे पूछा—"रानी को तो नहीं देखा?"

मैंने अधीरता से कहा—"नहीं तो पर आप इस तरह घबड़ा क्यों रहे हैं! आखिर बात क्या है?"

रानी तैरने में प्रवीण थी अतः हमें उसकी फ़िक्र अकारण-सी लग रही थी। मगर ढूँढते-ढूँढते जब काफी समय बीत गया तब हमें उसकी चिन्ता ने बेतरह घेर लिया।

बहुत खोज-बीन करने के बाद हमें वह मिल तो गई—पर निष्प्राण अवस्था में। डाक्टरों ने पोस्ट मार्टम कर बताया कि एकाएक हृदयगति रुक जाने से यह सब अनर्थ हुआ है। उसका अन्त्येष्टि संस्कार हुआ। पतिदेव ने गहरी सांस ली और कहा—"आखिर ज्योतिषी की भविष्य-वाणी सच साबित हुई। बिचारी रानी—"

जब कभी मैं एकांत में बैठती तो मेरी आँखों के आगे रानी की सूरत घूम जाती। और एक सर्द आह भर कर रह जाती। मुझे बरबस उसके शब्द स्मरण हो आते—"जानना चाहती हूँ कि कब मरूँगी?"—"मुझे यकीन हुआ है तो इस बात का कि मनुष्य यदि चाहे तो वह स्वस्थ और सुखी जीवन को भी एक क्षण में समाप्त कर सकता है।" यह घटना मेरे लिए निहायत ही दुःखदायक थी।

आखिर रानी अपनी जिन्दगी से इतनी निराश क्यों हो गई थी ! क्या उसे अपनी माँ का बिछोह इतना असह्य हो गया था ! और वह ज्योतिषी—? लोगों का भविष्य पढ़ने में उसे तो कमाल हासिल है। लिखा था न उसने—'यह बता रहे हैं कि तुम्हारे जीवन में शीघ्र ही कोई दुखदायक घटना घटने वाली है। संभवतः मृत्यु।' मैं ऐसे सिद्ध महात्मा के अवश्य दर्शन करूँगी और उसे बताऊँगी कि उसकी भाग्यवाणी में सचाई का कितना अंश मूल्य था।

और एक दिन—पतिदेव को बिना बताए मैं उस महात्मा की सेवा में जाकर उपस्थित हुई। जाकर देखा—महात्मा इकहरा और लम्बे कद का व्यक्ति था। वह बहुत दुबला-पतला था। शायद इसीलिए उसका कद लम्बा जान पड़ता था। मैंने सविनय अपने आने का उद्देश प्रकट किया। महात्मा बोले— आए हुए पत्रों का मैं सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करता हूँ। मुझे अपनी भविष्यवाणी पर पूर्ण विश्वास है। लेकिन तुम्हारी बात जानकर न जाने क्यों मेरा मन उन पत्रों को एक बार पुनः देखने को विवश हो रहा है।" वह उठा और जब वह वापस आया तो मैंने देखा, उसके हाथ में एक बंडल था। रानी ने जो पत्र इस वीतराग महात्मा को लिखा था, वह पत्र इस बंडल में सुरक्षित था। महात्मा ने वह पत्र दिखाया। मैंने रानी के हस्ताक्षर पहचान लिए। पत्र रानी का ही था। पत्र में लिखा था कि वह किसी से प्यार करती है पर उसके प्रेम-पात्र को इसका ज्ञान नहीं है। रानी ने अपने प्रियतम के सम्बन्ध में जो रेखाएँ प्रस्तुत की थीं और

मुसकान और ममता : श्रीमती कला प्रकाश
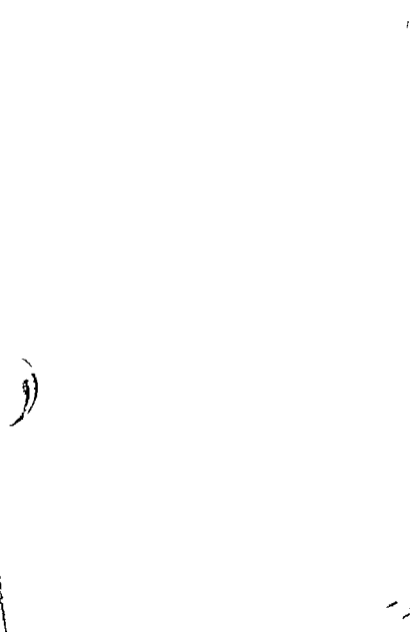
श्रीमती कला प्रकाश और श्रीमती सुन्दरी उत्तम-चन्दानी सिन्धी-लेखिकाओं में अग्रणी हैं। इन दोनों का स्मरण एक साथ ही आता है। श्रीमती कला की रचनाओं में माँ का हृदय झाँकता हुआ-सा मिलेगा। "ममता जूं लहरूं" शीर्षक से इनके कई गद्य-गीत छपे हैं। ये गद्य-गीत कवीन्द्र रवीन्द्र की रचना Crescent Moon का-सा लोकोत्तर आनन्द देते हैं। कला के दो उपन्यास "हिक दिल हजार अरमान" और "शीशे जो दिल" निकल चुके हैं।

प्रस्तुत कहानी, लेखिका की प्रतिनिधि कहानी है। इसमें दिखाया गया है कि नारी-पद की चरम परिणति मातृत्व में ही है।

●
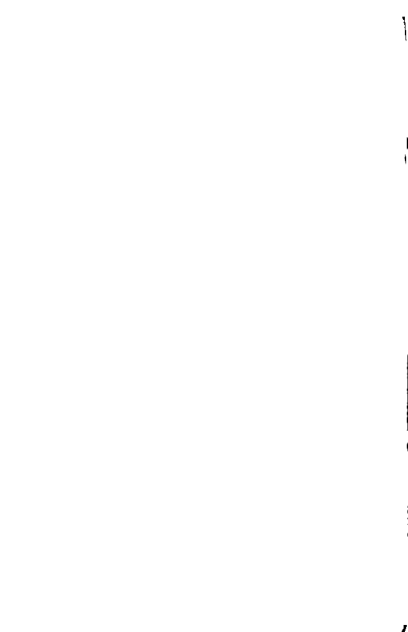
मुसकान
और
ममता

ममता की यह सजीव मूर्ति मेरे आगे निर्जीव पड़ी है। वह स्वयं निर्जीव है। पर ममता को सजीव बना गई है। उसकी हरेक बात याद आती है। मेरी आँखें आँसुओं से भर आती हैं।

जब रात को मेरी भाभी आई तो दिनवाली नर्स ने बताया, "संभवतः आज रात ही प्रसव हो जाय, क्योंकि लक्षण साफ दिखाई दे रहे हैं।"

"अच्छा" मैंने हर्षातिरेक से उसके हाथ पकड़े। फिर उसके पीत-वर्ण मुख की ओर देखकर, शरारतभरी मुस्कराहट से कहा, "दो तीन घण्टों की देर है। बताओ तुम्हें मुन्नू चाहिये या मुन्नी?"

प्रसव-पीड़ा से उसका चेहरा पसीने से तर हो गया था। फिर भी वह मेरे सवाल से मुस्करा उठी। संभवतः यह उसका पहला बच्चा था। मेज से घण्टी उठाकर मैंने उसे दी और कहा— 'यह लो, जब पीड़ा अधिक बढ़ जाय तब यह बार-बार से बजाना।" उसने घण्टी ले ली और अपने तकिये के नीचे रख दी।

रात को लगभग तीन बजे उसने घण्टी बजाई। मैं दौड़ी गई। वह बिस्तर से उठी और उसने सिरहाने के दाहिनी ओर रक्खे गुलाब के दो-तीन फूल लिये। मैंने उसे सहारा दिया। उससे पूछा, "ये फूल 'डिलेवरी-रूम' में भी ले चलोगी?"

उसने उत्तर दिया, "तुम्हें दे रही हूँ सिस्टर!"

फूलों से उसको विशेष प्यार था। उससे मेरा परिचय भी इन फूलों द्वारा हुआ था। जाने 'आउट-डोर-पेशन्टस-डिपार्टमेंट' में जब वह हर रोज़ 'इंजेक्शन' लगवाने आती थी तो मुझे याद नहीं पड़ता, कब वह मिठाई या कपड़ा हो। अन्यान्य स्त्रियों की तरह उसने कभी मेरा समय नष्ट नहीं किया। इसलिए जब वह अस्पताल के कमरे में प्रवेश करती तो मैं मुस्कराकर उसका स्वागत करती। एक दिन गुलाब का फूल देते हुए वह बोली "तुम मुझे जानती नहीं, फिर भी हर रोज़ मधुर मुस्कराहट से मेरा स्वागत करती हो, इसलिए यह फूल दे रही हूँ। स्वीकार करोगी?"

मैंने प्रसन्न होकर कहा, "अवश्य!"

इस वार्ड में वह पिछले सप्ताह से रह रही थी। उसका पति रोज़ उसके लिए प्रतिदिन गुलाब के फूल ले आता था। पहले दिन की बात है। जब मैं ड्यूटी पर थी तो मुझे बुलाकर उसने अपने पति से मेरा परिचय कराया। 'डिलेवरी रूम' के बाहर दीवार पर अत्यन्त सुन्दर और स्वस्थ बच्चों की तस्वीरें टँगी हुई हैं। पति की निगाहें उन पर जा टिकीं। वह मिनककर बोला, मुझे सुडौल और स्वस्थ बच्चे प्यारे लगते हैं। ऐसे बच्चे, जिनकी यदि चर्चा भी दें तो न

गये ?" कहने को तो बिचारा यह कह गया। लेकिन दूसरे ही क्षण वह शिथिल लज्जा से लाल हो उठा।

अब पापू आता ही होगा। उसे ऐसा अशुभ समाचार देने के लिए मैं ही क्यों यहाँ ड्यूटी पर हूँ। इतना साहस मैं कैसे बटोर सकती हूँ। उसे कैसे बता सकती हूँ कि उसका पापा अब इस संसार में नहीं रहा। अभी तो थी। इन घण्टों के इस अन्तराल में क्या से क्या हो गया। मैं पिछले ग्यारह सालों से इस अस्पताल में काम करती आई हूँ। मैंने अनगिनत मौतें अपनी आँखों से देखी हैं। फिर आज इस पर ही क्यों मैं कमजोर हुई जा रही हूँ। अभी तो वह यहीं थी। सुबह की ही बात है। चार बजे के लगभग वह पीड़ा से कराह उठी। निकट जाकर मैंने उसे ढाढ़स बँधाया। उससे कहा, "घबराओ नहीं। क्यों क्या हो रहा है ?"

दर्द से उसकी एक सिसकी निकल गई। वह बोली "पता नहीं मुझे क्या हो रहा है ! सिस्टर कुछ बता नहीं सकता।"

उसकी उस आवाज में छिपा दर्द थी। मैंने इन लक्षणों से उसके दर्द की हालत जाँचने की कोशिश की। बिगड़ती हुई हालत मालूम पड़ी। मैंने वार्ड ब्वाय को भेजकर डॉक्टर कुमारी शाह को बुला भेजा।

डॉक्टर ने पंद्रह मिनट तक उसकी जाँच-पड़ताल की। फिर ललाट में झुर्रियाँ लाकर उसने कहा "डिलेवरी जल्द हो जानी चाहिए। अन्यथा इसको खतरा है।"

मैंने पास के वार्ड से दो और नर्सें बुला भेजीं। सुबह के पाँच बजे तक उसकी पीड़ा निरन्तर बढ़ती गई। अन्त में वह अपने को सम्हाल

न सकी और रो उठी। मैंने उसे धीरज दिया, "ऐसा न करो, देखो—"

वह मेरे हाथ को दबाते हुए बोली, "सिस्टर मैं क्या करूँ! मुझे खुद शर्म आती है कि मैं रो रही हूँ। लेकिन करूँ क्या! जाने क्या हो रहा है!"

उसकी असह्य पीड़ा को देखकर मेरी आँखों में भी आँसू छलछला उठे। उसके 'सिस्टर' कहने के ढंग में कूट-कूट कर आत्मीयता भरी थी।

जब डॉक्टर कुमारी शाह लौटकर आईं तो कहा, 'इसको ऑक्सीजन दो।" उन्होंने उसके रक्त का दबाव भी देखा। फिर मुझे पास बुलाकर कहने लगीं, "हालत बिगड़ रही है।"

हालत बिगड़ रही है, यह मुझ से भी छिपा न था। मैं भी देख रही थी कि उसकी हालत बिगड़ रही है। डाक्टर ने समय नष्ट न कर उससे कागज पर हस्ताक्षर ले लिये और अपना काम शुरू कर दिया। दस-पंद्रह मिनट में प्रसव हो गया।

बच्चे ने 'उआँ-उआँ" की। माँ के कान्तिहीन होंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई। ममता को अमर करने वाली मुस्कराहट थी वह। बच्चे की इस गुलाबी रुलाई 'उआँ-उआँ" से उसे क्या मिला, कितना मिला, यह एक माँ ही बता सकती है।

वह स्वयं निस्तेज होती गई। उसकी नब्ज़ की गति मंद पड़ गई। मैंने जब चौथी बार उसे 'इंजेक्शन' दिया, तब वह पगली पूछती है, "सिस्टर, बेबी कितने पाउंड है?"

मैंने भरे दिल से कहा, "पाँच पाउंड।"

उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और धीमे से कहा, "तुम चन्द्र को कहना कि हमारा बेबी छः पाउंड का है।"

मेरा हृदय टूक-टूक हो गया। बरबस मुँह पर मुस्कराहट लाकर मैंने उससे कहा, "हाँ, तुम कोई चिंता न करो। मैं उसे साथ ही पाउडर बताऊँगी।"

उसने अपनी आँखें खोलीं। मुसकायी और फिर बोली, 'तुम बहुत अच्छी हो, सिस्टर!"

यह क्या था! उसकी नाड़ी ढीली पड़ती जा रही थी। इतना होते हुए भी वह कैसे बोल पाती थी! कैसे मुस्करा सकती थी! हम सब उदास मुँह और अशांत हृदय लिए एक दूसरे की ओर देख रही थीं। मृत्यु दौड़ती हुई उसके पास आ रही थी। हम सब उसे उससे दूर रखने के प्रयत्न में लगी हुई थीं। वो स्वयं जीवन और मरण के बीच खड़ी थी, उसको इसका लेशमात्र भी भान न था। मौत उसकी आँखों की चमक छीन सकता था। पर उसके होठों की मुस्कराहट को छीन सकना, उसके बस बूते का काम न था। उसने एक जीवन का निर्माण किया था मौत को परास्त किया था।

क्षण भर के लिए जी में आया कि मैं उसे बताऊँ कि वह अब कुछ घड़ियों की मेहमान है। लेकिन उसके नयनों में जो सपने पल रहे थे, उन को भंग करने की शक्ति मुझ में न थी। मैं भी एक माँ हूँ। मुझे सुधि है कि वह उस समय कौन-से सपनों में खोई हुई थी। घर में बच्चे के लिए वह झबला बनाकर रख आई होगी। नन्हें बच्चे को कहाँ सुलाएगी कौन-सा दूध पिलाएगी, यही सब वह सोच रही होगी। सम्भवतः वह यह भी सोच रही होगी कि वह उस नवजात शिशु को कौन-से स्कूल में प्रविष्ट कराएगी।

कृष्ण नगरी

'उस दिन तुम कैमेरी की गुफाओं को न चले। तुम्हें प्राचीन सभ्यता के अवशेषों से इतना प्रेम नहीं जितना कि कलाकार को होना चाहिये!' —राम ने कहा।

"पुरानी सभ्यता के अवशेष! उनको देखना तो अवश्य चाहिये। लेकिन उनसे प्रेम करने से क्या हमारी समस्याएँ हल होंगी?"—मैंने पूछा।

"क्यों नहीं होंगी! हमारा प्रत्येक नया कदम भूतकाल के अनुभवों के आधार पर ही तो उठता है। अतीत की अच्छी बातों को यदि हम नये विचारों के साथ ढाल दें तो हमारी उन्नति होगी।"—राम ने अपने घुंघराले सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"आखिर क्या था पत्थर की उन गुफाओं में, जिनसे तुम्हें इतनी प्रेरणा मिली है। कुछ सुनाओगे भी या केवल प्रशंसा के पुल ही बाँधते रहोगे।"—मैंने उत्सुकता से पूछा।

राम को कैनेरी की गुफाओं से सम्बंधित सारी बातें याद हो आईं। उसके मुँह से सबकी सब बातें एक साथ निकलना चाहती थीं। उसने संयत वाणी में कहना शुरू किया—

उस दिन रविवार था। कैनेरी के विषय में बहुत कुछ सुना था। वह बोरीवली से पाँच मील दूर है। बड़े सवेरे बड़ौदा में बोरीवली को जानेवाली गाड़ी में जा बैठा। जब गाड़ी दादर स्टेशन पर पहुँची तो लोगों की भीड़ डब्बे में घुस आई। सब खाली जगहें भरी जा चुकी थीं। कुछ लोगों को खड़ा रहना पड़ा। मैं अपने विचारों में मग्न खिड़की से बाहर की तरफ झाँक रहा था। कभी-कभी मेरी दृष्टि बाहर से हटकर अन्दर खड़े लोगों पर पड़ जाती। कुछ देर बाद मुझे ऐसा लगा कि कोई मेरी ओर देख रहा है। सचमुच वह मेरी ओर देख रही थी। वह शायद दादर स्टेशन पर उस भीड़ के साथ गाड़ी में आई थी। मैंने सोचा, शायद वह लड़की बैठने की जगह की तलाश में है। आजकल स्त्रियाँ और पुरुषों को समानाधिकार प्राप्त है, यह विचार कर मैंने उसे जगह देना आवश्यक न समझा। मैं अपने विचारों में लीन हो गया। उसने फिर मेरी ओर देखा। मोहन, तुम्हें मालूम है कि बचपन में यदि कोई मुझे सुन्दर कहता था तो मैं उसे मन ही मन कोसता था। परन्तु बड़ा होने पर सुंदर वस्तुओं ने मुझे आकर्षित करना शुरू किया। मेरी धारणा

बदल गई है। मैंने मान लिया है कि सौंदर्य सबको भाता है। पर अब तो मैं सुंदर भी नहीं रहा। गालों पर वह लाली कहाँ जो आज से पाँच साल पहले थी। ......उसके होंठ लिपिस्टिक से सीना किये हुए थे। परंतु उसकी आँखें उसका कहा मान नहीं रही थीं। वे घूम फिर कर अनायास ही मुस्कार पड़तीं। कभी तो वे मुस्करा भी देतीं। उस साँवली सूरत मोहनी मूरत के अधरों पर लिपिस्टिक कुछ फबती न थी। उसने संभवतः अपने को अधिक सुंदर बनाने के लिए ऐसा करना उचित समझा था। मैं कह नहीं सकता।

मन में कुछ ऊटपटांग विचार आये और चले गये। इतने में गाड़ी बारीवली पहुँच गई। गाड़ी से नीचे उतरने पर मालूम हुआ कि वह लड़की दादर से आई हुई टुकड़ी के साथ कैनेरी गुफाओं की ओर ही जा रही है। उन लोगों में से एक के गले में ढोलक लटक रही थी और दूसरे के हाथ में बाँसुरी थी। वे सब शिक्षित मध्यवित्त वर्ग के लोग लगते थे। मुझे रास्ता मालूम नहीं था। इसलिए मैं भी उनके साथ हो लिया। बोरीवली का कच्चा हिस्सा पूरा हो गया और नैशनल पार्क शुरू हो गया। वहाँ एक गंदे पानी का नाला बह रहा था। कुछ यात्री पार्क में बैठ गये। कुछ लोग कैनेरी की ओर चल पड़े। वह लड़की कभी-कभी पीछे मुड़कर देख लेती। अब शायद उसे मालूम हो चुका था कि मैं भी कैनेरी का यात्री हूँ। उसने अपने एक साथी के कान में कुछ कहा। उस आदमी की गति शिथिल पड़ गई। अब मैं उसके निकट पहुँच चुका था। उसने मुझसे पूछा—"क्या आप भी कैनेरी चल रहे हैं।"

मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया, "हाँ !"

उसने कहा, "अकेले ही !"

"क्यों कोई डर है क्या !"—मैंने पूछा।

"नहीं, यह बात नहीं। मेरा मतलब था, अकेले क्या मजा आयेगा ! आओ, हमारे साथ चलो !"

"धन्यवाद, मुझे आपके साथ चलने में खुशी होगी।"

वह मुझसे इधर-उधर के प्रश्न पूछता रहा। मैंने भी उनका परिचय पा लिया। वे सब रेलवे कर्मचारी थे और कामगार-संघ के सदस्य थे। उनमें रेलवे मजदूर, फिटर और बाबू सभी थे।

रास्ता सुनसान जंगल सा था। कहीं-कहीं मजदूर रास्ता चौड़ा कर रहे थे ताकि मोटर आ-जा सके। इतने में टुकड़ी के एक सदस्य ने बाँसुरी की मीठी तान छेड़ी। दूसरे ने ढोलक बजाना शुरू किया। सच ही उस समय स्वर-लहरियों पर दिल थिरकना चाहता था। सब साथियों ने मिलकर एक मीठा गीत भी गाया। वह गीत मेरी समझ में न आया। इसलिए एक साथी ने उसका भावार्थ बताया—

'हम श्रमिक सारी दुनिया को बनाने वाले हैं। दुनिया की प्रत्येक वस्तु पर हमारा खून-पसीना लगा है। हमारे कमाये हुए धन पर पूँजीपति इतराते हैं। मुट्ठी भर लोग हमारा धन छीन ले जाते हैं। हम बेबसी से देखते रहते हैं। लेकिन अब हम बेबस नहीं हैं। अब हम जाग गये हैं।'

"वाह वा ! बात तो मन की कही है !"

"सच ! क्या तुम हमसे सहमत हो !"

"मैं स्वयं बेरोजगार मजदूर हूँ। मेरे कई देशवासी बेकार हैं। सचमुच मुट्ठी भर लोगों ने हमारे मुँह का कौर छीना है।"

हम सब आगे बढ़ते गये। दूर एक झोंपड़ी दिखाई दी। तीन मील पैदल चले थे। प्यास के मारे सब बेहाल थे।

झोंपड़ी के पास पहुँचे तो देखा कि तीन नंग-धड़ंग बच्चे खेल रहे थे। उन बच्चों का रंग कड़ाके की धूप में नंगे फिरने से काला पड़ गया था। उस लड़की ने उनसे मराठी में पानी के लिए पूछा। पहले तो बच्चे इतने सारे लोगों को देखकर सहम गये। फिर उन्होंने अन्दर आने के लिए इशारा किया। हम दो-दो तीन-तीन होकर झोंपड़ी में गये। वहाँ एक बुढ़िया चिथड़ों में लिपटी, एक कोने में पड़ी थी। वह दर्द से चिल्ला रही थी। झोंपड़ी के दूसरे कोने में पानी का एक घड़ा पड़ा था। उसके पास जंग लगा टिन का एक पुराना डब्बा पड़ा था। सब ने उससे पानी पिया। मैं बुढ़िया के पास गया। पूछने में झिझक सी हो रही थी, लेकिन पूछ ही लिया "घर में और कोई नहीं?"

"बाहर जो बच्चे खेल रहे हैं, वे मेरे पोते हैं। बेटा और बहू दोनों लकड़ी बेचने बोरीवली गये हैं। बेचकर आटा-दाल लाएँगे।"

'आटा-दाल लाएँगे, तीन मील दूर से!"

"हाँ। अपना अनाज तो सरकार ले जाती है।"

'क्या तुम्हारी अपनी जमीन है?'

'कृष्ण नगरी में किसी की अपनी जमीन नहीं है। सब साहूकार लोगों की जमीन जोतते हैं।'

"कृष्ण नगरी ?"

"हाँ, जिधर तुम जा रहे हो, वह कृष्ण नगरी ही है। तुम लोग उसका नाम बिगाड़कर बोलते हो। वह गोपाल की कृष्ण की नगरी है।"

"तुम्हें क्या हुआ है, माँ ?"

"मेरा बुढ़ापा ही मेरा रोग है बेटा। दमा से चैन नहीं है। तुमने मुझे माँ कहा ! मैं तो भीलनी हूँ।"

"फिर क्या हुआ ! हम सब एक जैसे नहीं हैं क्या ?"

पानी पीकर सब ताजे हो गये। अभी दो मील और जाना था। अतः तीव्र गति से चल दिये।

बुढ़िया की बातों से क्रोध और दया के भाव एक साथ उमड़ आये। टोली के लोग आगे बढ़ गये थे। यह शायद इसलिए कि जब मन गहरे विचारों में डूब जाता है, तब शरीर की गति शिथिल पड़ जाती है। लेकिन उन लोगों से बहुत दूर भी न था। उनमें से कोई फिल्मी गीत गा रहा था। पर मैं सोच रहा था—ये नंग-धड़ंग बच्चे, बीमार बूढ़ी माएँ, लकड़ी के भार से दबी जा रही युवतियाँ, घासफूस की झोंपड़ियाँ। क्या यही हमारा देश है ?

"तुम क्यों पीछे रह गये ?"—उस लड़की ने पूछा।

"कुछ सोच रहा था।"—मेरा जवाब था।

"क्या किसी की याद सता रही है ? सचमुच इस सूने वन में कई यादें ताजा हो जाती हैं।"—उसने कटाक्ष किया।

"नहीं-नहीं..."

"काला तो नहीं, साँवला मत कहो। साँवली भले ही हो, पर सुन्दर, ऊँची और नाजुक लड़की हो।"

"सुन्दर! और मैं?" —और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। हम अन्य लोगों तक पहुँच चुके थे। अब हम कैनेरी गुफाओं के दामन में आ गये थे। सब लोग बैठ गये। पास ही दो बोर्ड लगे थे, जिन पर इन गुफाओं का संक्षिप्त इतिहास लिखा था। उन बोर्डों के आगे एक भिखारी और एक भिखारिन बैठी थी। भिखारी फटी-पुरानी कमीज और लंगोट पहने था। उसका मुख बुद्ध भगवान के मुँह की तरह लम्बा था। बूढ़ी भिखारिन का शरीर तीन हिस्से नग्न था। वे आने जाने वालों के आगे हाथ फैलाते थे। अब हम पहाड़ पर चढ़ने लगे। कुछ ही ऊपर जाने पर हमें एक गुफा मिली, जिसमें कोई मूर्ति न थी। परन्तु वह गुफा अति सुन्दर बनी थी। उसके आगे एक हाल-सा दिखाई दिया, जिसकी दीवारों पर हजारों मूर्तियाँ खुदी हुई थीं। उस हाल में भगवान बुद्ध की दो सौम्य मूर्तियाँ भी थीं। प्रत्येक मूर्ति लगभग २५ हाथ ऊँची होगी। ऊपर चढ़ने पर कई छोटी-बड़ी गुफाएँ नजर आईं। प्रत्येक गुफा के बायीं ओर पानी की टंकी बनी थी। अब हम सब अपने-अपने काम में जुट गये। कोई आग जलाने में लग गया, कोई आटा गूँधने में। मैं पानी लाने चला गया।

एक गुफा की टंकी में जैसे ही मैंने डोल डाला एक आदमी गुफा के बाहर निकल आया। मैं डर गया।

"तुम कौन हो? अन्दर क्या कर रहे थे?"

"क्यों? तुम डर गये? सचमुच डरने की बात भी है। इन

गुफाओं में कभी-कभी शेर भी आ बैठते हैं। मैं यहाँ बचपन से आया करता हूँ। मुझे इस कृष्ण नगरी का चप्पा-चप्पा मालूम है।"

"कृष्ण नगरी! यह तो कैनेरी है।"

"हाँ, कृष्ण नगरी का बिगड़ा-बदला रूप। यह सब चीनों ने किया है; नहीं तो, यह कृष्ण नगरी ही कहलाता था।"

मैं पानी से बात मरकर चल दिया। वह भी मेरे साथ हो लिया।

'कृष्ण और राम, भगवान के अवतार थे। तुम जानते हो कि उन्होंने सत्य और न्याय के लिए शस्त्र उठाये थे। कृष्ण और राम ने अपने अधिकार के लिए लड़ना सिखाया। आज उनकी सन्तान बौद्धों के सिखाये हुए मार्ग पर चलकर अन्याय सहन कर रही है। बौद्धों ने हमारे हाथ-पाँव काट डाले।"

"ऐसा नहीं है। महात्मा बुद्ध का प्रभाव पूर्वी ऐशिया पर था। कंधार और काबुल में आज भी बुद्ध की मूर्तियाँ अवस्थित हैं। चीन में आज भी पर्याप्त संख्या में बौद्ध हैं।"

"चीन में बौद्ध हैं पर अहिंसावादी बौद्ध नहीं हैं। चीनियों ने अपने देश से जनता के लुटेरों को भगा दिया है।"

"तुम कौन हो?"—मेरी जिज्ञासा बढ़ी।

"मेरा नाम मोदक है। मैं डाकखाने में काम करता हूँ। हर रविवार को कैनेरी आता हूँ और लोगों का मुफ्त गाइड (Guide) बनता हूँ। मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। केवल न्याय चाहता हूँ।"

"क्या तुम्हारे साथ कोई अन्याय हुआ है?

"मेरे साथ भी और तुम्हारे साथ भी। सबके साथ अन्याय हुआ, हजारों बार हुआ है। फिर कभी सुनाऊँगा।"—और वह लाठी टेकता हुआ चला गया।

मैं अपने डेरे पर पहुँचा तो देखा कि वह लड़की बाँसुरी की लय पर नाच रही है। उसने अपनी साड़ी को कसकर बाँध लिया था। वह कृष्ण लीला की समस्त मुद्राएँ नृत्य द्वारा बता रही थी। उसने मुरलीधर कृष्ण की मुद्रा बनाई। माखन चोर का रूप, कालिया मदन, राधा प्रेम-दर्शन। अन्त में उसने कृष्ण का न्याय के लिए लड़ना बताया। जब नृत्य समाप्त हुआ तो सब की आँखों में विचित्र चमक थी। ऐसा लगता था मानों सब के सब अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए उद्यत हो गये हों।

उसके बाद दाल रोटी का प्रीति-भोज हुआ।

शाम को जब लौट रहे थे तो वह लड़की गाड़ी में मेरे पास बैठी थी। मैंने उससे अनायास ही कहा—"तुमने तो कमाल कर दिखाया। नृत्य-कला में तुम बड़ी निपुण हो।"

"मैं तो अभी नृत्य सीख रही हूँ। यह भी घर में एक सहेली से। लेकिन तुमने तो अपना नाम तक नहीं बताया।"

"तुमने अपना बताया है क्या। पहले तुम नाम बताओ।"

"सिंधु!"

"सिंधु नदी तो हमारा प्राण है।"

"और तुम्हारा नाम?"

"राम!"

"राम ! बिन सीता के राम । क्या तुम्हें सीता का वियोग महसूस नहीं होता ?"

"होता है । लेकिन क्या करूँ ? सीता कारागार में बन्द है । मैं रोजगार ढूँढने के साथ-साथ उस समाज के लिए भी प्रयत्न कर रहा हूँ जिसमें ऐसे अन्याय न होंगे ।"

गाड़ी दादर स्टेशन पर पहुँची तो सिपु भी अपनी टोली के साथियों के साथ भीड़ को चीरती हुई गाड़ी से उतर गई । लेकिन मुझे अभी तक वह साँवली सुंदर, बड़ी-बड़ी आँखों वाली ऊँची, नाजुक सिपु याद है । उसकी नृत्यकला भी याद है ।

इतना कहकर राम चुप हो गया और यादों में खो गया ।

o

लापता का पत्र — श्री मोतीलाल जोतवाणी

श्री जोतवाणी अधिकतर हिंदी में लिखते हैं। सिंधी भाषा और साहित्य पर इनके कई लेख साहित्य-संदेश (आगरा), जीवन-साहित्य (नई दिल्ली), साप्ताहिक हिन्दुस्तान (नई दिल्ली), राष्ट्र-भारती (वर्धा) में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने सिंधी की कई दर्जन श्रेष्ठ कहानियों के सफल हिंदी अनुवाद किये हैं। ये अनुवाद हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं में स्थान पा चुके हैं। प्रस्तुत संग्रह, इस दिशा में एक पग मात्र है।

श्री मोतीलाल जोतवाणी सिंधी के आलोचक और कहानीकार भी हैं। प्रस्तुत कहानी में इन्होंने एक नग्न यथार्थ की ओर इंगित किया है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इनके नग्न यथार्थ से जुगुप्सा का भाव पैदा नहीं होता। लेखक का विचार यह है कि समस्या को समस्या के रूप में खड़ा कर दो, हल स्वमेव निकल आएगा।

लापता
का
पत्र

एक प्रमुख मासिक की सम्पादिका श्रीमती रेखा अपने कार्यालय में कहानियों की फाईल निकालकर देखने लगी। सदैव की भाँति इस बार भी वह पत्रिका के आगामी अंक में तीन कहानियाँ देना चाहती थी। वह दो कहानियों का चुनाव कर चुकी थी। तीसरी कहानी के लिए कहानियों की फाईल देख रही थी कि इतने में शाम की डाक से उसे एक पत्र मिला। उसके पढ़ने के बाद, सम्पादिका बहुत ही उदास रही। उसके मन-पटल पर कई पुरानी घटनाएँ घूम उठीं। वह उन यादों में खो गई। इतने में उसने कलम उठाई और उस पत्र को 'कहानी' कालम में हूबहू प्रकाशित करने के लिए प्रेस में दे दिया। फिर वह उदास मन से समय से पहले दफ्तर छोड़ कर अपने घर को चल दी। वह पत्र था—

प्रिय रेखा

तुम्हारा समीर आठ-नौ साल का हुआ होगा। वह तुम से बहुत प्यार करता होगा। यहाँ आने पर मैं दो-ढाई साल की बहन

रमा आजकल मुझसे इतना प्यार पाती है कि वह मुझे ही अपनी माँ समझने लगी है। मेरी ममता जाग उठती है। क्या करूँ, कभी माताजी का इस बात की ओर ध्यान अवश्य जाता है। वह मेरी ओर विशेष अर्थ से भरी दृष्टि फेंकती हैं। मैं सिहर उठती हूँ कि यदि मेरा विवाह हुआ होता तो अब तक रमा से भी बड़ी कोई गुड़िया मेरी गोद में खेलती होती।

ऐसा तुम्हें पता है कि मेरा जन्म परम्पराओं के सीकचों में हुआ है। तुम्हें याद होगा कि बचपन में मुझे अपने घर तक में कुछ गाने-गुनगुनाने की इजाजत न थी। घर में यदि कोई पंक्ति गुनगुना उठती थी तो ऐसा लगता था, जैसे कोई बड़ा गुनाह कर रही हूँ। मुझे याद है कि तुम स्कूल के स्टेज पर भी उतरी थी और दुष्यन्त की शकुन्तला तक बनी थी। मेरे माँ-बाप के लिए यह सच्चाई, एक औपन्यासिक सचाई है। तुम तो अब भी अच्छा गा लेती होगी। मैं तो अपने अरमानों को गीतों में भी नहीं उतार सकती।

लेकिन अब मेरी दबी हुई भावनाओं को निकास का मार्ग मिल गया है। अब मेरा मन कुछ हल्का रहा करेगा। कुछ ही दिन हुए, मुझे तुम्हारा पता चला। मेरा एक भाई बम्बई से आया था। उसके पास एक पत्रिका थी। तुम्हारा पता उसी से लगा। अब तुम्हें पत्र लिखती रहूँगी। चाहे इन पत्रों के नीचे मेरा नाम न होगा, फिर भी तुम भेजने वाली अभागिन को जान ही जाओगी। इन पत्रों का उत्तर देना तुम्हारे लिए सम्भव न होगा। भई, मैं अपना नाम और पता

दे नहीं सकती। मुझ-ऐसी नारी होंठ सीए रहती है न। यह तो मेरी ज़्यादती है कि बन्धन तोड़कर पत्र लिखने बैठी हूँ। यह जीने का उपक्रम मात्र है। अन्यथा मन ही मन इतना धुआँ एकत्र हो गया था कि दम घुट-सा रहा था। मेरी प्रबल इच्छा हो रही है कि तुम्हें अपना पता दूँ। क्या मुझे सहानुभूति के दो शब्दों की आवश्यकता नहीं है? है तो। लेकिन सहानुभूति के तुम्हारे स्वर-शब्द मेरे लिए महँगे पड़ सकते हैं। इसलिए लापता ही रहना चाहती हूँ। फिर एक बात और भी है। मैं ही इन बेड़ियों में नहीं हूँ। अनगिनत हैं। जिस कलकत्ता शहर की इस लिफ़ाफ़े पर पोस्टस्टैम्प लगी हुई है, उसमें भी न जाने कितनी ऐसी अभागिनें रहती होंगी। किस-किस को हमदर्दी बतलाओगी?

वैसे भी मैं अब किसी हमदर्दी के लायक नहीं रही हूँ। तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं। अब तक सब से सब कुछ छिपाती रही हूँ। मुझसे अब अधिक आत्म-प्रवंचना नहीं होगी। अब तक फ्राक पहन कर लोगों को अपनी कम उम्र का झूठा सबूत देती रही हूँ। अब तो अँगिया पहनना भी छोड़ दिया है। इससे लोग सचाई जान गये हैं कि मेरी जवानी ढल रही है। कोई बात नहीं। अब मुझे इसकी कोई परवाह नहीं रही है। मर्दों की ललचाई निगाहों से न तब बच पाती थी न अब बच पाती हूँ। ये मर्द लोलुप क्यों होते हैं, रेखा! मुझसे खेलना तो चाहते हैं, लेकिन इनमें से कोई मुझे वरण करने को तैयार नहीं। उनमें चाहे सब कमियाँ हों; लेकिन वे उसके साथ विवाह-बन्धन में बँधेंगे, जो जवान हो, खूबसूरत हो,

अपनी माँ-बाप की इकलौती बेटी हो, पढ़ी-लिखी हो ताकि दफ़्तर में नौकरी करके उसके और उसके आगे दस-दस बच्चों के लिए कमा सके। कभी कोई समय था, जब मैं जवानी और खूबसूरती की शर्तें पूरी कर सकती थी। अब वह भी मेरे बस का नहीं है। सुन्दर और सुगठित इमारत के खण्डहर ही तो शेष रहे हैं।

हाँ तो छिपाऊँगी कुछ नहीं। उस दिन मेरा फुफेरा भाई गोपाल आया। उसका उल्लेख मैंने ऊपर इस पत्र में कहीं किया है। वह कलकत्ता पहली बार आया था। वह कोई पंद्रह दिन यहाँ रहा। मुझे ऐसा लगता है जैसे वह अर्सा बहुत जल्द बीत गया।

लेकिन अब पछता रही हूँ। वह यहाँ क्यों आया। मैं इतनी आगे क्यों कर बढ़ी। वह बड़ा हँसमुख और हाज़िर-जवाब है। मुझे उससे बातें करने में आनन्द मिलता था। मौका पाकर उससे बातचीत अवश्य करती थी। वह नारी-पुराण खोल बैठता। पीड़ित नारी के आँसू का रोना रोता। फिर मेरे लिए सहानुभूति के दो शब्द भी कहता।

एक दिन मैं मंदिर में जाने का बहाना करके उसके साथ हो ली। हमने एक रेस्तराँ में टोस्ट खाये और चाय भी पी। कलकत्ता शहर की बड़ी बड़ी सड़कें, उद्यान, रेस्तोराँ सब मेरे लिए नये थे। जो सालों से यहाँ रह रही थी, उसको एक ऐसे आदमी ने सैर कराई, जो अभी कल परसों यहाँ आया था। जब लोग हम दोनों को देख कर किसी कोने में ताकते तो मैं मन ही मन ठसक महसूस करती। वह भी शायद खुश होता और उस समय मेरा हाथ अपने हाथ

में लेकर चलता। कभी कभी उसके चेहरे पर एक प्रकार की चमक भी दीख पड़ती। शायद ये मर्द हर मौके के लिए तैयार रहते हैं। मौका देने की हमारी देर है। ऐसा, क्या है न कि तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी। उद्यान में घूमते-घूमते, पेड़ों और डालियों की मुद्रा का अनुकरण कर हम आलिंगन-बद्ध हो गये। मुझे ऐसा लगा कि जीवन के शब्दों में अर्थ भर गये हैं, सूने में रौनक आ गई है, अंधेरे में रोशनी हो गई है।

जब वह अपने घर के लिए विदा हो रहा था तो मैं पूजागृह में फूट-फूटकर रो रही थी। माँ ने कई बार पुकारा "तुम्हारा भाई जा रहा है?" अब की बार फिर पूजागृह में बैठकर पूजा का बहाना था। सच तो यह है कि मन यथार्थ की भूमि पर उतरकर अब मेरी इतनी हिम्मत नहीं होती थी कि उससे आँख मिला सकूँ। वह चला गया। उसका मन भी अवश्य भारी रहा होगा। इस घटना को वह भी भुला नहीं सकेगा। उस भी वह कचोटती रहेगी।

अब कल गोपाल ने अपने घर पहुँचने पर हमें पत्र लिखा है। उसमें उसने बड़ी निपुणता से मेरे लिए प्यार भेजा है। मेरी कन पटियों तक लाल हो गई। घर में उसका नाम किसी की जबान पर आता है तो अनायास ही शरीर में कंपकंपी पैदा हो जाती है। दिल की धड़कन साफ सुनाई देती है।

तुम्हें मेरी ये बातें अच्छी न लगती होंगी। मुझे भी अपनी ये बातें अच्छी नहीं लग रहीं। मुझे पता है कि तुम पर (किसी और को यह पत्र पढ़ने के लिए न देना, वरन् उसके ऊपर भी) इसका

अच्छा असर न पड़ेगा। लेकिन ऐसा हुआ जो है। जो हुआ है, उससे कहाँ तक भागा जा सकता है? मैं जानती हूँ, मैंने ठीक नहीं किया। यदि मैं उँगली आगे न करती तो, वह पहुँचा क्योंकर पकड़ता! लेकिन क्या करती!...मैं अपनी कमजोरी को मजबूरी का नाम दे रही हूँ। नहीं न! शायद यह मेरी मजबूरी ही हो, कमजोरी नहीं। कुछ कह नहीं सकती, सच, कुछ भी कह नहीं सकती।

तुम्हारी अपनी—

दस्तावेज़ : श्री नारायण 'भारती'

श्री नारायण 'भारती' सिंधी के देवेन्द्र 'सत्यार्थी' हैं। इन्होंने सिंधी लोक-साहित्य के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। बटवारे के बाद लेखक के भावुक हृदय पर विस्थापितों के दुःखों का गहरा प्रभाव पड़ा और उसने उस पृष्ठभूमि पर कई कहानियाँ लिखीं। उनमें 'कलेम' और 'दस्तावेज़' प्रसिद्ध हैं। 'भारती' ने बंगला उपन्यासों का सिंधी में अनुवाद भी किया है।

'दस्तावेज़' में मंघनमल का मानसिक द्वन्द्व देखिये। इस कहानी की विशेषता इस की गहराई में है जो विस्तृत कलेवर में सम्भवतः न होती।

o

द
स्ता
वे
ज़

क्लेम्स ऑफ़ीसर के दफ़्तर में आज मंघनमल की पेशी थी। उसने दस्तावेज़ों, रसीदों बहियों की पोटली खोली। वह हरेक के ऊपर विहंगम दृष्टि डालता हुआ कुछ गुनगुनाता जाता था। कभी तो एक आह भर कर रह जाता। उसने ज़मीन और मकान दोनों के क्लेम भरे थे। लेकिन आज उसकी पेशी बँटवारे के कारण सिन्ध में छोड़े मकानों के सम्बन्ध में थी। वह मकानों की दस्तावेज़ें अलग रखता जा रहा था।

ज्यों-ज्यों वह ये कागज़ देखता जाता था, त्यों-त्यों उसकी आँखों के आगे चलचित्र की भाँति कई घटनाएँ उभर कर आ रही थीं। कुछ दस्तावेज़ें दस साल पुरानी थीं। कुछ बीस साल। कुछ तो चालीस साल पहले की थीं। सदीक बढ़ई ने उसके अपने रहने के मकान में किवाड़ खिड़कियाँ आदि बनाई थीं। उसके बिलकुल पास ही सुन्दर

द
स्ता
वे
ज

क्लेम्स ऑफ़ीसर के दफ़्तर में कल मंघनमल की पेशी थी। उसने दस्तावेजों रसीदों, पट्टियों की पोटली खोली। वह हरेक के ऊपर विहंगम दृष्टि डालता हुआ कुछ गुनगुनाता जाता था। कभी तो एक आह भर कर रह जाता। उसने बगान और मकान दोनों के क्लेम भरे थे। लेकिन कल उसकी पेशी बँटवारे के कारण सिंध में छोड़े मकानों के सम्बन्ध में थी। वह मकानों की दस्तावेजें अलग रखता जा रहा था।

ज्यों-ज्यों वह ये कागज देखता जाता था, त्यों-त्यों उसकी आँखों के आगे चलचित्र की भाँति कई घटनाएँ उभर कर आ रही थीं। कुछ दस्तावेजें दस साल पुरानी थीं। कुछ बीस साल। कुछ तो चालीस साल पहले की थीं। शरीफ़ बढ़ई ने उसके अपने रहने के मकान में किवाड़, खिड़कियाँ आदि बनाई थीं। उसके बिलकुल पास ही सुपर

रहता था। वह चन्दन की जमीन जोतता था। जाने कितनी कहानियाँ उसके मन-पटल पर फूल उठीं।

इतने में उसकी दृष्टि एक दस्तावेज पर जा पड़ी...वह सारा दस्तावेज एक साँस में पढ़ गया। लिखा था—"मैं रसूलबख्श, पुत्र नबी बख्श, काम खेती, उम्र तीस साल, गाँव मीरल, तहसील कम्बर, जिला लाड़काना, अपनी खुशी से लिखकर देता हूँ कि अपना मकान— सेठ मंघनमल..... को बेच दिया।"

मंघनमल आगे न पढ़ सका। उसका दिल भर आया। उसके आगे रसूल बख्श की जगह उसकी पत्नी और छोटे बच्चे के चित्र खिंच उठे। कितना प्यारा बच्चा था रसूले का। उसकी दुकान के आगे से गुजरते समय वह अपनी तोतली जबान में उससे कहा करता था— 'मालिक, मुझे अपना चरवाहा न बनाओगे। मैं तुम्हारी गायें चराया करूँगा।" फिर काल्पनिक गायें हाँकता हुआ निकल जाता। मंघनमल भी फसल के दिनों में रसूल बख्श को पुचकार कहता— "यह नाज लो। तुम्हारे रमजान के लिए है। वह मेरी गायें चराया करता है।" फिर वे दोनों, रमजान की सरल-सुभाव बातें याद करके मुसकरा उठते थे।

बँटवारे से साल भर पहले एक दिन रसूल बख्श उसके पास आया था। मंघनमल को भूला नहीं है। उसने आते ही कहा— "मालिक, मेरी खेती सूख जायगी। मैं गरीब लुट जाऊँगा। मुझे बीज खरीदने के लिए पैसे चाहिये।"

इस पर मंघनमल ने क्रुद्ध होकर कहा था— मियाँ, दो सौ रुपये

के लगभग तुम्हारी तरफ अभी रहते हैं। वे रुपये लौटाये नहीं हैं। दूसरा तकाज़ा जान हो। मैं कुछ भी नहीं दे सकूँगा। किसी और से जा माँगो।" यह कहकर वह कुछे की नली रखकर, जूता चरमराता हुआ जाने लगा। रसूल बख्श दरवाजे की देहलीज से उठा। उसने अपना साफा उतार कर मक्खनमल के पैरों पर धर दिया। कहा—"मालिक, इस बार यह अहसान मुझ गरीब पर करो। मेरे पास कोई ऐसी चीज़ नहीं जो जमा रख सकूँ। बानू के गले में शादी की रात वाला एक गहना पड़ा था, वह भी मसू बनिये के पास गिरवी रख आया हूँ। कमाना चाहिए था। धन्धा तो रहना नहीं है। चाटे-कपड़े के बिना किससे रहा जाता है!"

मक्खनमल बोला—"अच्छा मियाँ अच्छा। जब आये हो तो निराश नहीं करूँगा। बाबा के समय से कारज करते आए हो। हमारे यहाँ न आओगे तो कहाँ जाओगे। लेकिन भाई रुपये-पैसे का मामला है। हर समय एक-सा भी नहीं होता। फिर सन्तान पर क्या भरोसा। इसलिए पचास रुपये ले जाओ। डेढ़ सौ तो तुम्हारी तरफ हैं ही और दो सौ रुपये में अपना मकान लिख कर दे जाओ।"

रसूल बख्श गिड़गिड़ाया—"मालिक, सिर्फ यही मकान बाकी रहा है। वह भी—"

मक्खनमल ने बीच ही में काटकर कहा—"मियाँ, यह तुमसे छीनता कौन है। अब जैसे उसमें रह रहे हो वैसे बैठे रहो। जब खुदा तुम्हारे अच्छे दिन लौटा दे तो फिर अपनी जगह के मालिक बन जाना। सिर्फ दो रुपये महीना देते रहना। दुनिया को जो मुँह

दिखाना है। भाई, दो रुपये भी नहीं लूँगा तो ये बनिये कहेंगे—देखो मंघन ने रसूले को...... तुम खुद समझदार हो भाई।"

इस तरह लिखा-पढ़ी की गई। आज मंघनमल को सारी बातें याद आ गईं। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। वह सोचने लगा—अब रसूला कहाँ होगा? अच्छा, मुझे याद भी करता होगा?... अब क्या वह यह दस्तावेज़ क्लेम-ऑफीसर को दिखाये? यह तो ठीक है कि अब वह मकान उसका था। उसने दो सौ रुपये दिये थे। लेकिन यदि वह इस दस्तावेज़ को पेश करेगा तो उसे उस मकान के भी पैसे मिलेंगे। पाकिस्तान सरकार रसूले से मकान छीन कर नीलाम करेगी और पैसे वसूल करेगी। फिर वह रसूला कहाँ रहेगा?.... जब हम यहाँ आ रहे थे तो रसूला हैदराबाद तक छोड़ने आया था। बिचारे ने किराया तक नहीं लिया। कहता था—"नहीं मालिक नहीं, यह तो हमारा फर्ज़ है। कुरान भी यही कहता है कि पास-पड़ोस से भाईचारे से रहो।...मालिक, फिर क्या तुम नहीं हो आओगे?"

और मैं अब उसके सर पर का छप्पर छीनूँ? रहने के लिए सब के सर पर छत चाहिए?—उसके आँसुओं की धारा बह चली और दस्तावेज़ पर पड़ कर स्याही की लिखावट को विच्छिन्न करने लगी।

०

भक्तों को भगवान न मिल सका : श्री लोकनाथ

श्री लोकनाथ सिंधी के सिद्धहस्त कहानीकार हैं। इनका एक कहानी-संग्रह पिछले साल प्रकाशित हुआ जिसको कोडोमल सिंधी-साहित्य-मण्डल ने १९५७ का सर्व श्रेष्ठ कहानी-संग्रह घोषित किया और पुरस्कार से सम्मा दृत किया।

प्रस्तुत कहानी को पढ़ने के बाद आपको पूर्व भारत के सफल कथाकार श्री हरिमोहन झा का बरबस स्मरण हो आएगा। श्री लोकनाथ की इस कहानी में, श्री हरिमोहन झा की कहानियों में पाया जाने वाला मनोरंजक-शास्त्रार्थ मिलेगा। लेखक जन को जनार्दन मानता है, नर को नारायण के रूप में देखता है। उसने विज्ञान के युग में रहने वाले एक प्रबुद्ध मनुष्य का सफल चित्रण किया है, जो तर्कों द्वारा ईश्वर का अस्तित्व जानना चाहता है। अन्त में साधुओं को देश के पुनरुत्थान में अपना पूरा योग देने की बात है।

भक्तों को भगवान न मिल सका

"तो क्या आप ध्यानावस्था में ईश-दर्शन कर सकते हैं?"—मैंने स्वामी जी से पूछा।

"अवश्य। बिलकुल उसी प्रकार जैसे मैं आप सब को देख रहा हूँ।"—स्वामी जी ने प्रत्युत्तर दिया।

"स्वामी जी, ईश्वर निराकार है?"

"निःसंदेह।"

"निर्गुण है, अजन्मा है, ज्ञानातीत है?"

"निश्चित ही।"

"हम उसे इन चर्मचक्षुओं से देख नहीं सकेंगे, ज्ञानातीत होने के कारण बुद्धि, मन, ज्ञान से समझ नहीं सकेंगे। उपनिषद् ईश्वर के सम्बन्ध में "नेति-नेति" कहते हैं। जब वह ऐसा है तो फिर मैं समझता हूँ कि उपनिषदों का कथन "नेति नेति" (यह भी नहीं

है, यह भी नहीं है) सर्वथा सत्य है। ईश्वर कुछ भी नहीं है, कोरी कल्पना है।"

"प्रिय सज्जन मन पर जब अज्ञान का पर्दा पड़ जाता है, तब हम ईश्वर को नहीं समझ पाते हैं।"

"स्वामी जी, तो क्या मेरी शंकाएँ अज्ञानपूर्ण हैं ! जो ईश्वर को यथार्थ रूप में जानने की चेष्टा करे, क्या वह अज्ञानी है।"

"नहीं-नहीं, मेरा आशय है कि श्रद्धा न होने से हम उस सत् चित्-आनन्द को कैसे समझ सकते हैं।"

"स्वामी जी, श्रद्धा की उत्पत्ति तो वस्तु के परिज्ञान से ही होती है। उसके बिना तो श्रद्धा, श्रद्धा नहीं, अन्ध श्रद्धा है।"

"भक्तजन ! ईश्वर निर्गुण होते हुए भी सगुण, निराकार होते हुए भी साकार और सर्वव्यापी है। वह ज्ञान स्वरूप, प्रेम स्वरूप, सर्व शक्तिमान है।" स्वामीजी ने किंचित मुँमलाहट से कहा।

"स्वामी जी इस शब्द-जाल से ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं मिलता। मैं चाहता हूँ कि आप तर्क से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करें।" मैंने सविनय कहा।

"आँखों में ज्योति उत्पन्न करनेवाली, कानों को श्रवण-शक्ति प्रदान करनेवाली नासिका का गंध-क्षमता देनवाली, कोई एक चैतन्य शक्ति है जो इस शरीर का अंग न होते हुए भी इस शरीर का कर्म-संचालन करती है।"—स्वामी जी का उत्तर था।

"लेकिन स्वामीजी, हमारा शरीर तो Living Organism है। इसका अंग प्रत्यंग स्वतः काम करता है। जब तक दिल की

धड़कन है तब तक प्राण है और जब तक प्राण है तब तक शरीर काम करेगा।"—मैंने कहा।

"हाँ, शाबाश! अब आये हो तुम वास्तविक बात पर। यह जो तुमने प्राण नामक वस्तु का उल्लेख किया है वह प्राण क्या है? शरीर में प्राणरूपी चैतन्य शक्ति ही तो ईश्वर है।"

"लेकिन स्वामीजी, प्राण तो शुद्ध वायु है। यह श्वास है जो हम लेते हैं। यह वायु जब हम अन्दर लेते हैं तो यह नाड़ियों में रक्त-संचालन करती है। इस रक्त-संचालन से शरीर का अंग प्रत्यंग कार्य करता है। और यदि आप इस वायु को ही ईश्वर कहते हैं तो यह आपका कुतर्क होगा।"

भक्त जन तुम कुछ काल चिंतन करो ताकि तुम्हारे अज्ञान अंधकार का पट विदीर्ण हो। अब हम यह वार्तालाप स्थगित करते हैं। देखो माता भगतिन कितनी देर से प्रतीक्षा कर रही है। संत अब प्रसाद पायेंगे।"—स्वामी जी इतना कहकर उठ खड़े हुए। साथ भगत और भगतिनें भी उठ खड़ी हुईं।

मैंने देखा कि भगतिनों की संख्या भगतों से तिगुनी-चौगुनी थी। गुलाब के फूलों की तरह लाल लाल मुस्कराते हुए चेहरे। उनके अंग प्रत्यंग में यौवन हिलोरें मार रहा था। उनकी भावावर्त की लहराती साड़ियों से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वसन्त ऋतु की तितलियाँ हों। स्वामी जी और भगतिनें एक बड़े कमरे में प्रविष्ट हुए। कई एक खाद्य-व्यंजन मेजों पर रखे हुए थे। पूरे कमरे की सजावट पश्चिमी सभ्यता के ढंग पर थी। रेडियो-संगीत की मधुर

मद-भरी लहरों से यह कमरा गूँज रहा था। इन्द्रपुरी का-सा दृश्य था। स्वामीजी एक कुर्सी पर विराजमान हो गये। उन्होंने सामने दृष्टि डाली। चम्पा और रत्ना खड़ी थीं। स्वामी जी ने मुस्कुराते हुए उनसे कहा—"चम्पा और रत्ना, आओ आओ अरे खड़ी क्यों हो! आओ, इधर आकर बैठो।"

एक ओर चम्पा और दूसरी ओर रत्ना। बीच में स्वामी जी। स्वामी जी ने षट्रस भोजन किया और तृप्त हुए।

"शरीर अन्नमय कोश है, अन्न प्राण है, प्राण ही परमात्मा है', स्वामी जी ने भक्तों को सम्बोधित करते हुए कहा "गीता में भी उल्लेख है—अन्नं भवति भूतानि—अन्न से ही प्राणियों की उत्पत्ति होती है। उपनिषदों का कहना है कि "अन्नं ब्रह्म"। अन्न भगवान है, अन्न का निरादर करना भगवान का निरादर करना है।"

भक्त जन स्वामीजी की ज्ञान राशि से विस्मित होकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे। एक श्रद्धालु भगतिन ने कहा—"स्वामी जी ज्ञान के भण्डार हैं।' दूसरी ने कहा—"नहीं नहीं स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं।"

एक पंजाबी भगतिन ने समर्थन किया, "प्रेम्र मन साँईयाँ ए साँई दे रूप। वहाँ एक और पंजाबी युवती थी। उसने व्यंग्य करती हुए कहा—"आहो जी, आहो, जब भगवान् दा पेट वदि आसी, ते भगवान दा रूप न होसी तो और की होसी।"

एक सिंधी भगतिन को, पंजाबी 'कुड़ी' का यह व्यंग्य नागवार गुजरा। लेकिन उसने उससे अधिक विवाद करना बेकार न समझा और वह कमरे के दूसरे कोने में चली गई।

अब फिर मण्डली ड्राईंग रूम में आकर एकत्रित हो गई। भक्तगण अपनी-अपनी जगह पर आकर बैठ गये।

स्वामीजी ने कहा 'हा हा हा! भई, पंचगनी के सुमधुर और सुरम्य वातावरण में चम्पा और रत्ना के भजनों ने अनन्य आनन्द की सृष्टि की। ये दोनों न होतीं तो वह आनन्द न आता।"

'स्वामीजी, आप पहाड़ों की सैर को गए थे?" पंजाबी 'कुड़ी' ने पूछा।

बिटिया, साधुओं का न पहाड़ों की सैर से कोई मतलब है, न रसास्वादन से सम्बन्ध। शैलों के वे गगन चुम्बी शिखर, वहाँ का प्रशान्त वायु-मण्डल, फैली हुई वादियाँ उनके विशाल प्रांगण! स्वर्गीय आनन्द का अनुभव होता है। ऐसे निस्तब्ध वातावरण में ही ईशानुभूति होती है। भगतिनों का ईश को साक्षात्कार कराने की इच्छा से पहाड़ों पर गये थे। सात दिन अलौकिक आनन्द में बीत गये।"

"और हाँ," एक भगतिन ने कहा, "स्वामीजी ने हमें एक अपनी कौड़ी तक खर्च करने न दी। बम्बई से पंचगनी तक आने जाने का फर्स्ट क्लास का किराया, बस का किराया, वहाँ के खाने-पीने का खर्चा—सब स्वामीजी ने दिया। स्वामीजी की अपार महिमा पर मैं वारी-वारी जाऊँ।"

"हाँ, बी बी बिटिया हम कौन होते हैं खर्चा करने वाले। किसी प्रिय भक्त की श्रद्धा हुई। उसने खर्चा किया। देखो, वही भक्त सामने तो बैठा है।"

मैंने देखा कि वह भक्त रत्ना और चम्पा का रूपपान कर रहा

था। अब समझा तो कबूतर की तरह गर्दन सिकोड़ते हुए बोला, "मेरी क्या बिसात है। सब गुरुदेव की कृपा है। इन्हीं की कृपा से भगवान् देता है और इन्हीं की आज्ञा से हम खर्च करते हैं। सब स्वामीजी की महिमा है। खर्चा भी क्या हुआ, यही कोई दो हज़ार रुपये ..."

"दो हज़ार रुपये!"—मेरे मुँह से एक हल्की चीख निकल गई। मैंने कहा, 'स्वामीजी, आप बड़े कृपालु हैं। बम्बई के भक्तों पर तो आपकी विशेष कृपा-दृष्टि दीख पड़ती है।"

"देखो भक्त जन! हम संतों के यहाँ बम्बई, दिल्ली, कलकत्ते के भक्तों में कोई भेद नहीं है। भक्त तो भगवान के रूप हैं।"

'और भगतिनें, स्वामी जी!" मैं एकाएक पूछ बैठा।

"देखो प्रियजन, वैसे तो शास्त्रोक्त नीति के अनुसार स्त्री शूद्र है। लेकिन पारस रूपी संतजन के स्पर्श से वह कंचन बन जाती है। स्त्रियाँ भी शुद्ध आत्मा हैं और भगवान की ही रूप हैं।"

"तो स्वामी जी, आप भक्तजनों का पहाड़ों के एकान्त में ले जाकर ईशानुभूति करवाते हैं!' मैंने पूछा।

"हाँ-हाँ अवश्य, दिल्ली के भक्तों के साथ पिछले महीने हमने पन्द्रह दिन शिमले में व्यतीत किये थे। वहाँ पर भी खर्चा दिल्ली के लाला हरिचन्द ने दिया था। उससे पहले हम मद्रों की टोली के साथ दार्जिलिंग गये थे।"

"धन्य स्वामी जी, धन्य!" और फिर बात का रुख बदलते हुए मैंने कहा, "स्वामी जी, शाम की चाय भी यहीं पीने की कृपा करें।

लेकिन आपके भक्तजनों को खान-पान कराने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है।'

"नहीं पुत्र, खान की हमें कोई इच्छा नहीं है। हम तो भक्त-जनों के सहवास के अभिलाषी हैं। हम से अकेले खाया नहीं जायगी। जब तक दो चार भक्तजन इकट्ठे न हों तब तक हमें आनन्द न मिलेगा। जरा से ही पूछ लो कल कोसाला में कितना आनन्द-मंगल हुआ था।"

'वाह वाह! कल तो सचमुच सारा दिन बड़े आनन्द में बीता। स्वामी जी का जन्म-दिवस मनाया गया था। सारा दिन भजन-कीर्तन होता रहा। भक्तों के लिए सारा दिन 'लंगर' खुला रहा। अनेक भक्तजन एकत्रित हुए थे। लगभग दो सौ अवश्य थे। दोनों समय भोजन भी वहीं हुआ।"

मैंने सोचा कि पाँच सौ से कम व्यय न हुआ होगा। मेरी पड़ोसिन के यहाँ पर भी तो सन्तों का यह तीसरा मास था। स्वामी जी नगर में लगभग एक मास से थे। स्वामी जी की पार्टी का भोज नगर के किसी न किसी हिस्से में होता ही रहता है। इन भोजों पर पाँच हजार से कम क्या खर्च आया होगा। पञ्चगनी में दो हजार। शिमले और दार्जिलिंग में भी लगभग दो-दो हजार व्यय हुए होंगे। कुल मिलाकर ग्यारह हजार के लगभग खर्च। यह सब केवल तीन महीने में हुआ है। साल भर का हिसाब लगाया तो मेरा हृदय काँप उठा।

किन्तु जैसे तैसे सम्हलकर, मैंने स्वामी जी को सम्बोधित करते

हुए कहा, "स्वामी जी, आपको ज्ञात है कि कल्याण कैम्प में आगे महीने आत्महत्या होती रहती है।"

"राम राम! महापाप! प्रियजन, वे लोग महापापी हैं, जो आत्महत्या करते हैं।"

"नहीं-नहीं, स्वामी जी, वे धर्मात्मा हैं।"

"छी, छी, छी! मिथ्या-भाषण न करो।"

"स्वामी जी मिथ्या नहीं, सत्य, ध्रुव सत्य बोल रहा हूँ। वे सब ईश्वर में अनुरक्त होते हैं। ईश्वर का अन्वेषण कर-करके जब थक जाते हैं, तब आत्महत्या कर डालते हैं।"

"बड़े अद्भुत प्राणी हो। भगवान की प्राप्ति के लिए भी क्या कोई आत्महत्या करता है?"

"हाँ, स्वामी जी। आपने अभी बताया कि शरीर अन्नमय कोश है। अन्न प्राण है। प्राण परमेश्वर है। वे अन्न रूपी परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्न करते हैं। जब हार जाते हैं तब उसका वियोग उनके लिए असह्य हो उठता है। वे आत्महत्या कर डालते हैं।"

"पाप शांत हो, पाप शांत हो।"—स्वामी जी कहा।

"स्वामी जी, यदि आत्महत्या पाप है तो आप इस पाप को रोकने का कोई उपाय क्यों नहीं करते?" मैंने प्रश्न किया।

"उपाय! हम कौन-सा उपाय कर सकते हैं?"

"यदि आप चाहें तो कल्याण कैम्प में एक फैक्टरी खुलवा सकते हैं। उसमें अनेक बेकार श्रम में लगाये जा सकते हैं।"

"राम राम राम! बेटा, प्रत्येक प्राणी अपना कर्मफल भुगत रहा है। सांसारिक व्यवसायों से हमारा क्या सम्बन्ध! हमने तो भगवद् चरणों की सेवा का व्रत ले रक्खा है!"

इतने में गली में शोर सुनाई दिया। कराहने चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। स्वामी जी के ललाट पर पसीने की बूँदें चमक उठीं। उन्होंने पूछा—"बाहर किस बात का शोर है!"

मैंने बाहर जाकर देखा। भीतर लौटकर स्वामीजी से कहा "कुछ एक भक्त भगवान का प्राप्त करने के लिए उद्विग्न हो रहे हैं।"

"भक्त! मेरे प्यारे भक्त! भगवान को प्राप्त करने के लिए उद्विग्न हो रहे हैं!"—स्वामीजी ने आर्द्र स्वर से कहा और वे उठकर खड़े हो गये। बाहर निकल आये। पीछे-पीछे उनके भगत और भगतिनें भी बाहर निकल आईं।

लेकिन बाहर भग्न-मनोरथ भूखे, जीर्ण-शीर्ण भिखारियों को देख कर स्वामीजी की आँखें मारे क्रोध के लाल हो उठीं।

वे उपेक्षापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखकर बोले "दुष्ट, तू हमारी हँसी उड़ाता है। पापी तुझे नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी।"

स्वामीजी और उनके भक्तजन तो अन्दर चले गये। लेकिन बाहर भक्तों को भगवान न मिल सका।

●

हँसोड़ : श्री शेख अयाज

श्री शेख अयाज कवि भी हैं और कहानीकार भी। इनकी कविता में कहानी की-सी रोचकता होती है और इनकी कहानी में कविता का-सा रस झलकता है। आप पाकिस्तान में रहते हैं। लेकिन राजनीति के क्षेत्र में दीवारें होना सम्भव है साहित्य के पुनीत प्रांगण में नहीं। जिस तरह हम चाँद की चाँदनी को हिस्सों में बाँट नहीं सकते, उसी तरह सत्साहित्य के रचयिताओं को देश और काल की संकीर्ण परिधि में बाँधना श्रेयस्कर नहीं है।

"हँसोड़" कहानी की हँसोड़ के जीवन पर हँसी का एकाधिकार था। लेकिन एक दिन ऐसा आया जब हँसी ने उससे अपना नाता तोड़ दिया और उसके जीवन पर आँसू का आधिपत्य हो गया।

हँसोड़

उसकी सरलता में शरारत थी और शरारत में सरलता। कभी वह अबोध बच्चों की तरह नाचती हुई आती और पीछे आकर मेरी आँखें अपने हाथों से ढाँप देती। कभी एकाएक सर के बाल बिगाड़कर कहती, "देखो, अपना क्या हाल बना रक्खा है!" फिर आईना उठाकर मेरे हाथ में धर देती। कभी पेन्सिल छोड़कर पानी पीने के लिए उठता तो मेरे पीछे उसका सिक्का तोड़ देती और ज्यों ही पेन्सिल उठाने की कोशिश करता तो खिलखिलाकर हँस पड़ती। कभी अपनी चुनरिया का छाता बनाकर अपने सर पर बाँध आती और मेरे हाथों से पुस्तक छीनकर कहती, "कहो अब क्या कहना चाहते हो?" कभी आइसक्रीम लेकर मेरी गर्दन में घुमाती। कभी शर्बत में नमक डालकर लाती। कभी बर्फ़ फँसाकर मेरे मनपसंद लाती और चुप करा देती। एक दिन वह अपनी हथेली पर बिच्छू ले आई। क्या पता उसने कैसे उसका डंक निकाला था!

"देखो, इसे मैंने अपने वश में किया है।" मुझे भी शरारत सूझी और मैंने प्रत्युत्तर दिया, 'तुम तो दुनिया को भी अपने वश में कर सकती हो।' यह सुनकर उसके कपोल आरक्त हो उठे।

एक दिन दोपहर को मुझे कुछ देर हो गई। वह मेरे लिए खाना ले आई। मैंने उसे बहुत समझाया कि मैं स्वयमेव खा लूँगा। लेकिन वह माननेवाली न थी। कौर पर कौर मेरे मुँह में ठूँसती गई। मैं झल्ला उठा। बोला, "औरत के लिए 'वामा' शब्द ठीक कहा गया है। लड़के परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं। तुम रह गई।" उसने उत्तर दिया, "ठीक है।" और रोटी के टुकड़े में गाजर की हड्डी छिपाकर मेरे मुँह में डाल दी। जब वह हड्डी दाँतों तले आ गई तो दो दाँत जड़ से हिल उठे। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और भाग गई। मैं आगबबूला हो गया और आखिर में उसे कह दिया, 'सीमा, मैं आज के बाद यहाँ न आऊँगा।"

उसने चुनौती स्वीकार कर ली और कहा, 'अच्छा। लेकिन कब तक नहीं आओगे? तुम उस शोरागुल में एक शब्द तक नहीं पढ़ पाओगे।"

उसका कहना सच था। हमारा घर छोटा था। छोटे-छोटे बच्चे अधिक थे। इसके विपरीत उसका घर बड़ा था और घर में दो जने थे। मौसी और वह। इसलिए मैं वहाँ जाकर बी० ए० की पढ़ाई करता था। लेकिन उसने नाक में दम कर दिया था। प्रतिदिन उसे नई शरारत सूझती थी। मैट्रिक परीक्षा में रह गई तो उसने आगे पढ़ने का विचार ही छोड़ दिया। अब शायद वह मेरे पीछे पड़ी थी।

एक दिन उसने मेरे हाथ में कैमेरा देख लिया। कहने लगी कि मैं उसका फोटो लूँ। बहुत आनाकानी की। लेकिन जब मेरी एक न चली तो मैं तैयार हो गया। वह सामने खड़ी हो गई और मैंने 'क्लिक' किया तो उसने झट अपना मुँह ढँक लिया।

एक बार मैं उसे प्रजातंत्रवाद के सिद्धान्त समझा रहा था। वह कुछ सोचने लगी। फिर बोली "लेकिन ईश्वर तो हमें प्रजातंत्रवादी दृष्टिकोण की शिक्षा नहीं देता। वह स्वर्ग की अपेक्षा नरक में अधिक लोगों को भेजता है। यह बहुमत का कहाँ आदर करता है?" इतने में उसके मन में एक और विचार उठा। फिर तो वह पूरा भाषण ही झाड़ने लगी "लेकिन भई स्वर्ग-नरक की बातें भी विचित्र हैं। मैं तो सोचते-सोचते असमंजस में पड़ जाती हूँ। मैट्रिक में हमारे अध्यापकजी ने बताया था कि सूफी सम्प्रदाय के लोगों का मत है कि आत्मा में परमात्मा का अंश विद्यमान है। यदि यह ठीक है तो इसका मतलब यह हुआ कि नरक में आत्मा के साथ परमात्मा भी जाता है।" मैं सोच रहा था कि वह ऐसी शरारत वाली बातें कहाँ से लाती है। ईश्वर को भी नहीं छोड़ती।

उसकी हँसी में जीवन था। हँसते समय उसके गालों में गुलाब के लाल फूल खिल उठते थे, उसके पतले होंठ शबनम की बूँदों में चार्ज हो जाते थे। मैंने उसे कभी मुस्कराते हुए नहीं देखा। जब देखा तो हँसते हुए पाया। उसकी हँसी में समूचे संसार का संगीत छिड़ उठता था। उसकी खिलखिलाहट में सरलता और शरारत, हाथ में हाथ डाल, नृत्य करती थी। वह अकेली हाती तो गा[illegible]ती।

शरारतें भरी थी। अभी तक वह इतना हँसती थी कि उसकी आँखों में आँसू तिरने लगते थे।

लेकिन......

कल जब मैं दफ्तर से लौटा तो मैंने देखा कि वह मेरे लाडले पुन्नू से खेल रही है। पुन्नू ने कुछ ही दिन पहले लटपटी चाल से चलना सीखा था। मुझे देखकर वह अपनी तोतली ज़बान से बोला "बा...बा"। मैंने उसे गोद में लेना चाहा। वह उसकी छाती से चिपट गया और बोला, "माँ"। मैंने उससे कहा, "अरे, तुम्हारी मा तो खाना बना रही है। यह तुम्हारी फूफी है बेटा।" लेकिन वह मेरी बात को न समझा और फिर बोला, "माँ"।

मैंने देखा, सीमा का मुँह फीका पड़ गया। उसकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह चली। मैंने साश्चर्य पूछा, "क्यों माँ, कुशल तो है?"

उसने नन्हे पुन्नू का चुम्बन लिया और वह उसकी कमीज़ में मुँह छिपाकर सिसकने लगी। मैं चकित रह गया। सम्भवतः पहली बार उसकी खिलखिलाहट ने उसके आँसू से अपना नाता तोड़ दिया था। जीवन हँसी का अधिक सहारा न ले सका और उस पर आँसू का अधिकार हो ही गया।

उच्छृंखल   श्री के० एस० मालानी

श्री के० एस० मालानी सिन्धी कहानीकारों की शृंखला में नवीन कड़ी हैं। ये अधिकतर कहानियाँ लिखते हैं। अभी हाल ही में इनका एक सिन्धी उपन्यास "पी पवी" निकला है। कभी-कभार इनके एकांकी नाटक भी पढ़ने को मिलते हैं।

प्रस्तुत कहानी सिन्धी की एक पुरस्कृत कहानी है। इसकी नायिका एक ही दिन में दो बात बड़ी बोलने लगती है और बिचारी कम्मो से सुरती कम्मो लगने लगती है।

उलझन

"यह जो सामने लड़की देख रहे हो, यह मेरी एक कहानी की नायिका है।"

"......"

"हँसते क्यों हो!"

"क्योंकि तुम्हारे पागलपन में अब कोई सन्देह नहीं रहा।"

"हूँ! और तुम्हें देखकर मुझे विश्वास हुआ कि मूर्खों की संख्या में एक की वृद्धि हुई।"

"तुम लेखक हो, बुद्धिमान को बुद्धिहीन बनाना तुम्हारी कलम का खेल है।"

"तुम्हारे विचार से क्या सुन्दर व सच्चरित्र ही कहानी की नायिका बन सकती है!"

"ताज्जुब है। इस १४-१५ साल की काली-कलूटी लड़की से तुम्हें इतना मोह क्यों हो गया है!"

मैं चुप हो गया। बरामदा छोड़कर भीतर आ गया। नौकर चाय की ट्रे मेज पर रख गया। मैं और सन्तू चुपचाप चाय पीते रहे।

एकाएक सन्तू बोला, "विजय, क्या तुम अपनी 'नायिका' के सम्बन्ध में सोच रहे हो?"

ठीक उसी समय कम्मो सिसकियाँ भरती हुई मेरे सम्मुख आ खड़ी हुई। मैंने उसे ढाढस बँधाते हुए पूछा, "क्या बात है, कम्मो?"

वह बोली, "मैं अपनी सहेली के यहाँ से आ रही थी...पिता जी ने देख लिया और घर पर मेरी खूब मरम्मत की।"

"तुम अपनी सहेली के यहाँ भी न जाया करो। कम्मो, मैंने तुम्हें कह दिया है कि अब तुम अपनी पढ़ाई में मन लगाओ। धीरे धीरे सब ठीक हो जायगा।"

"क्या आपके यहाँ भी न आऊँ?"

"देखो, तुम्हारे पिता जी को पता चल गया तो बेकार में तुम्हारी पिटाई होगी।"—मैंने उसके बालों को सहलाते हुए कहा।

उसने मेरी ओर देखा। फिर हिरनी की तरह तेजी से भाग गई। सन्तू मुस्कराते हुए बोला, "हूँ, तो यही है तुम्हारी नायिका और तुम हो नायक?"

"मैं और कहानी का नायक?" ऐसी बात मैंने कभी सोची न थी।

कुर्सी पर से उठकर मैं फिर बरामदे में आया। मैंने देखा कि कम्मी अपने घर के दरवाजे पर खड़ी होकर मेरी ओर रूमाल हिला रही है। फिर शायद किसी के बुलाने पर अन्दर चली गई।

मेरे पीछे आकर सम्मू ने मेरे कन्धों पर हाथ रखा और कहा, यदि मुझे इतना पता होता कि कहानी के पात्र से कहानीकार का निकट का सम्बन्ध होता है तो मैं इस तरह तुम्हारा दिल न दुखाता।"

"अच्छा रहने दो इस बात को। तुम क्या सचमुच बम्बई लौटने की सोच रहे हो?"

बाँह से खींचकर वह मुझे अन्दर ले गया और कुर्सी पर ला पटका। ऐसा लग रहा था, मानो वह अपराधी से सभी बात उगलवाएगा। फिर अधिकार पूर्ण वाणी से बोला, 'पहले यह बताओ कि तुम्हारी भाभिया बदनाम क्यों है?"

इस सीधे सवाल पर हँसी आ गई। मैंने कहा, सम्मू बाहर जाकर सैर कर आओ। मैं कुछ सोच रहा हूँ और मुझे अपने हाल पर छोड़ दो।"

रात के लगभग दस बजे थे। मैं अपनी कहानी के प्लाट पर काफी देर से सोच रहा था कि सम्मू सैर करके लौटा। वह मेरे सामने बैठ गया। मैंने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "सम्मू तुमने मुझसे पूछा कि मेरी भाभिया बदनाम क्यों है?"

'——"

"तो सुनो बदनामी का कारण उसकी बड़ी दीदी है।"

"कैसे?"

"गोमी पाउडर लगाती थी, सम्मो ने उसकी [illegible] उतारी।"

"फिर तो दोनों बहनें बदनाम होंगी। लेकिन इसमें बदनामी की क्या बात है?"

"गोमी माइसन की साड़ी पहने तो कम्मो माइसन की म्यक पहनने से बाज क्यों आये?"

"......"

"गोमी गले में रेशमी स्कार्फ बाधने लगी तो कम्मो ने भी ऐसा किया। वह यदि सिंगापुर की चप्पल पहनती तो वह भी "

सन्तू बेचैन दिखाई दिया। उसने मेरे कन्धों को झकझोर कर कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें बदनामी की क्या बात है? वह इतनी बदनाम क्यों है कि उसके माँ-बाप ने उसे घर में कैद कर रखा है?"

सन्तू पर मुझे अत्यन्त क्रोध आ रहा था। मैंने उससे कहा, "यदि तुम यहाँ से उठकर चल दोगे तो भी मैं अब यह कहानी कहना बन्द न करूँगा। दरोदीवार को सुनाऊँगा।"

वह चुप हो गया। मैंने कहना जारी रखा—गोमी खूबसूरत है, नौकरी करती है फैशनेबिल है, उसके कुछ चाहने वाले हैं। कम्मो छोटी है बदसूरत है, ढीठ है, उसने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया है। इतना होते हुए भी वह फैशनेबिल है।

एक शाम को वह सायकिल पर सवार होकर कहीं जा रही थी। मैंने देखा कि उसने खफा होकर सायकिल को उठाया और जमीन पर पटक दिया। उस रात को वह मेरे मकान के बाहरी दरवाजे के आगे बैठकर तीखरी से कुछ उल्टी-सीधी लकीरें खींच रही थी।

वह मेरी छाती से आ लगी। मुझे अपने बचाव के लिए कोई चारा दीख नहीं रहा था। मैंने उसे दूर धकेल दिया और उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया।...

"तमाचा!"—सन्नू चिल्लाया, "मैं तुम्हारा अनर्गल प्रलाप सुनने के लिए बिलकुल तैयार नहीं!"

× × × ×

कुछ दिनों के बाद सन्नू वापस चला गया। घर में मैं और मेरा नौकर था। छुट्टी का दिन था और मैं बड़ा उदास था। कुछ लिखना चाहता था। तभी एक विचार आया और मैं लिखने बैठा—

"प्रिय सन्नू,

तुम क्या यह समझते हो कि मेरा वह कदम गलत था? खैर। चूँकि मैंने उसके गाल, थप्पड़ मारकर लाल कर दिये थे, इसलिए उसने मुझसे बोलना बंद कर दिया। कभी रास्ते में ऐन सामने आ पड़ती तो मुँह फेर लेती। मुझे पता लगा कि वह लोचे और रेढ़ी वालों के यहाँ धड़ल्ले से खड़ी रहती है। यदि कभी किसी लोचे वाले ने उसके गाल या पीठ का हल्का स्पर्श किया तो वह हँस देती। एक दिन दोपहर को मैं गली की दुकान पर सर्फ लाने गया तो देखा कि वह उस दुकानदार से हँस हँसकर बातें कर रही है। उसके जाने के बाद दुकानदार से जो मेरा सवाल-जवाब हुआ, उसे लिखने की जरूरत नहीं है। हाँ, इतना अवश्य बता दूँ कि वह हमारी-तुम्हारी आयु का है। सच तो यह है कि मुझे उससे ईर्ष्या होने लगी। मैं कम्मो से मिलने के लिए अधीर हो उठा। एक सप्ताह बीत

गया। दो सप्ताह बीत गये। आखिरकार एक दिन मैंने उसे बुलाया। परंतु दूर से उसकी एक सहेली आ रही थी। वह न रुकी। उसने मुड़कर देखा तक नहीं।

उस रात को मैं देर तक जागता रहा। बाहर बरामदे में आया तो मैंने देखा कि वह अपने घर के बाहरी फाटक पर खड़ी थी। कहीं से रात रानी के फूलों की खुशबू आ रही थी। चाँद ऊँची ऊँची इमारतों के पीछे छिपा हुआ था। रास्ते सूने पड़े थे। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं। इतने में मुरली का मधुर मादक स्वर गूँज उठा। कोई फिल्मी धुन थी। सहसा मुरली की तान बंद हो गई और वह इधर-उधर देखकर भीतर चली गई। मैं अभी वहीं खड़ा था कि बाँसुरी फिर बज उठी और वह फिर बाहर निकल आई।

मैं हवा-खोरी का बहाना करके घर से बाहर आया और मैंने उस 'मुरलीधर' को ढूँढ़ने की कोशिश की। पर वह मुझे न मिला।

हर रात को बाँसुरी की वह मधुर ध्वनि अवश्य होती। एक रात को मैंने देखा कि मैले-कुचैले चिथड़ों में लिपटा एक लड़का बाँसुरी बजा रहा था। वह तनिक नजदीक आया तो उसने एक छोटा-सा ढेला उठाकर उसकी ओर फेंका और वह अंदर भाग गई।

उसके दूसरे दिन वह लड़का फिर आया। उसने एक तान छेड़ी और कम्मो दौड़ती हुई घर से बाहर निकली। लेकिन जब उसने उस लड़के को देखा तो उसके चेहरे पर दुःख की रेखा उभर आई। संभवतः यह वही लड़का था जिसने उसको एक बार सम-

फ़र्श पर रोका था और कम्मो ने उसे दूर धकेल दिया था। मैं निश्चय से कह नहीं सकता।

एक सुबह को नौकर ने बताया कि पड़ोसी की लड़की कम्मो रात-भर घर से गायब थी और अब लौटी है। यह आश्चर्यजनक बात तो अवश्य थी लेकिन असम्भव नहीं। मुझे स्थिति समझने में देर न लगी। मैं कम्मो के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की आवाज़ें सुन रहा था संभवतः उसका पिता उसकी बेतरह मरम्मत कर रहा था।

कुछ दिनों के बाद संयोगवश मैंने कम्मो को देखा। मेरी आँखें सजल हो उठीं, क्योंकि उसका मुँह और उसकी आँखें अभी तक सूजी हुई थीं। कुछ समय के बाद वह लुक-छिपकर, ढीली-ढाली हो, दरवाज़े के पास आ खड़ी हुई।

मैंने कहा, "कम्मो, आओ!"

वह वहाँ से न हिली। मैं उठा और उसे हाथ से अन्दर ले आया और बोला— कम्मो, क्या मैं तुमसे प्यार नहीं करता!" और मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो गया। मैंने उसके होंठ चूम लिये।

"तुम फिर तो कहीं भागकर न जाओगी!"

उसने मेरी आँखों में कुछ पढ़ने का प्रयत्न किया। मैंने अपनी उस छोटी साथिन के हाथ अपने हाथों में ले लिये। वह अपने पैरों की अँगुलियों पर खड़ी होकर और मेरे कंधों पर अपनी ठुड्डी रखकर बोली, "विजय, तुम्हारे कंधे तक पहुँचने में मुझे क्या अभी एक साल लगेगा!"

"कम्मा, तुम तो दो सालों के बाद भी इतनी ही रहोगी।"—मैंने उत्तर दिया।

"इतनी ही रहूँगी!" और वह अपने हाथ बुलाकर पलंग पर लेट गई। फिर बोली, "देखो विजय, मैं पलंग की लम्बाई से जरा सा तो कम हूँ!"

मैं हँस दिया। वह कहने लगी, "जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलूँगी!"

इस पर मैंने कहा, "नहीं कम्मो, तुम तो अब बड़ी लड़की बन गई हो!"

वह पलंग से उठी और मेरी पीठ पर चिकोटी काटकर अपने घर भाग गई।

उसके दूसरे दिन दफ्तर से लौटा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने देखा कि कमरे के बीच में मेज रक्खी है और उसके पास एक कुर्सी पर सफेद रेशमी साड़ी पहने एक युवती विराजमान है। उसका सिर झुका हुआ है। ऐसा लग रहा था मानो वह कोई पुस्तक पढ़ रही हो। मैं चकित रह गया। यह मेरी कौन रिश्तेदार थी? कहाँ से आई थी? इस उधेड़-बुन में मैं कुर्सी पर आ बैठा तो कम्मी ने सामने पाकर मेरे मुँह पर एक मुसकान खेल गई।

वह बोली "क्या आप दफ्तर से इतना 'लेट' आते हैं?" और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह एक रेशमी अन्दाज से रेडियो की ओर बढ़ी। उसके छोटे, भूरे रंग के बाल बकसुओं से बँधे हुए

प्रकाशकीय

"सिंधी की श्रेष्ठ कहानियाँ" पुस्तक आपके हाथ में है। यह हमारी संस्था का सौभाग्य है कि वह हिंदी में पहली बार सिंधी भाषा का कहानी-संग्रह प्रकाशित कर रहा है। हमें पूरा भरोसा है कि हिन्दी जगत इसका समुचित स्वागत करेगा।

सिंधी प्रदेश, मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता और मध्य-कालीन संस्कृति का मण्डप था। कई मनीषी इसे आर्य जाति के उत्थान की प्रथम भूमि मानते हैं। लेकिन खेद है कि आज सिंध हिन्दुस्तान का अंग नहीं रहा है। जिस सिंध की सिन्धु नदी से हमारे देश का नामकरण हिन्दू और हिन्द हुआ आज वह सिंध हमारे देश में नहीं है। लेकिन सिन्धी भाई हमारे साथ हैं। यहाँ आकर भी सिन्धी के साहित्यकारों ने अपने साहित्य की सत्ता का विचार नहीं छोड़ा। वे भाषा के मामले में संकीर्ण नहीं रहे। अपनी भाषा को वे एक परिचित देवनागरी लिपि में लिखने लगे हैं। कुछ लेखक तो सिन्धी के साथ हिन्दी में भी लिखने लगे हैं। इन कहानियों के संग्रहकर्ता श्री मोतीलाल जोतवाणी

का उदाहरण लीजिये। ये सिन्धी और हिन्दी दोनों के लेखक हैं। इन्होंने सिन्धी कहानियों के सफल अनुवाद किये हैं। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत संग्रह की प्रत्येक कहानी और कहानीकार पर सम्पादकीय टिप्पणी भी आपने लिख दी है।

सिन्धी साहित्य के साथ, सिन्ध, सिन्धु की स्मृति भी बनी रहे, यही हमारा उद्देश्य है। एक पंथ दो काज।

र-उ-म